उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो ।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

अंक—४

अप्रील—१९८४

वर्ष—३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा । निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा' ।।

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें ।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

प्रवाह-का जल वेग से बहता हुआ किसी-किसी स्थान पर थोड़ी देर भँवर में घूमने लगता हैं, परन्तु फिर शीघ्र ही वह सीधी गति में वेग के साथ बह निकलता है। पवित्र हृदय, धार्मिक व्यक्तियों का मन भी कभी-कभी दुःख, निराश, अविश्वास आदि के भँवर में पड़ जाता है, पर वह अधिक देर तक उसमें अटका नहीं रहता, शीघ्र ही उससे छूटकर आगे निकल जाता है ।

(२)

लड़का न होने पर लोग आँसुओं की धारा बहाते हैं, धन-सम्पत्ति नहीं मिली तो कितनी हाय-हाय करते हैं, परन्तु भगवान् के दर्शन नहीं हुए कहकर कितने जन व्याकुल होकर रोते हैं ? जो सचमुच भगवान् को चाहता है वह उन्हें अवश्य पाता है ।

(३)

दीपक का स्वभाव है प्रकाश देना पर उस प्रकाश में कोई रसोई बनाता है, कोई जाली कारँवाई करता है, तो कोई भागवत-पाठ करता है। परन्तु प्रकाश इन सब गुण-दोषों से निर्लिप्त है । इसी प्रकार, कोई तो भगवान् का नाम लेकर मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है, और कोई उसी नाम का पाखण्ड रच कर चोरी, ठगबाजी करता है परन्तु भगवान् इन सब से अलिप्त हैं ।

(४)

विश्वास और ज्ञान में परस्पर सम्बन्ध है । विश्वास जितना बढ़ेगा, उतना ही अधिक ज्ञान प्राप्त होगा । विश्वास न हो तो ज्ञान की आशा करना वृथा है । जो गाय चुन-चुनकर खाती है वह दूध कम देती है । और जो गाय घास-पत्ती, फड़वी, चोकर-भूसा जो मिले वही गपागप खा जाती है वह घर-घर दूध देती है, उसके दूध की धार नहीं टूटती ।

हृदय बीच आओ

—सारदा तनय

(हे) रामकृष्ण हृदयनाथ हृदय बीच आओ ।
(निज) तापहरण मधुर रूप दास को दिखाओ ॥

(तव) तेज पुंज दिव्य कांति, हरत सकल मोह भ्रान्ति,
(सब) शोक ताप भय अशान्ति चित्त से हटाओ ॥

(प्रभु) तुम दयालु दीन बन्धु, दीनशरण दया सिन्धु,
(अब) कर प्रदान कृपा बिन्दु दीन को तराओ ॥

(मम) देव-देव रामकृष्ण, तुम्हीं राम तुम्हीं कृष्ण,
(हे) पूर्ण काम विगततृष्ण, भव तृषा मिटाओ ॥
(हे) रामकृष्ण हृदयनाथ हृदय बीच आओ ॥

सम्पादकीय सम्बोधन
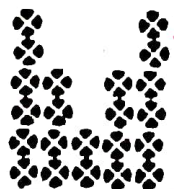
कै हंसा मोती चुगै, कै भूखौ मरि जाहि

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

उस दिन एक मित्र मेरे पास आये मिलने को। औपचारिक अभिवादन के उपरान्त उन्होंने कहा—छुट्टी थी। मन घर पर लगता नहीं था। सोचा, चलूँ, आप से मिल लूँ। मन भी लग जायगा और समय भी कट जायगा।' काफी देर तक इधर-उधर की बातें की उन्होंने। किसी एक विषय पर मन उनका अधिक देर तक ठहरता नहीं था। फिर किसी की तारीफ, किसी की शिकायतें! और अन्त में अचानक उठ कर चले गये वे माफी माँगते हुए—'आपका बहुत समय मैंने बर्बाद किया, क्षमा कीजिएगा।'

शाम ढल आयी थी—एक उदास, अलस, आत्मस्थ, वीतरागी शाम। आँगन के एक पेड़ पर बहुत देर से एक चिड़िया टू-टू,टू-टू कर रही थी। कोई थकान नहीं, कोई बिखराव नहीं, कोई शीघ्रता नहीं। बस, एक आवाज छेड़ती जा रही थी, एक राग अलापती जा रही थी। पता नहीं, उस राग का क्या अर्थ था? लेकिन गहराई से सुनने पर लगता था, यह टू-टू, टू-टू कोई प्रार्थना है, कोई आकुल पुकार है, किसी देवता को उतारने का आतुर अनुराग भरा अनुनय है, विनय है। कोई वंदना है जो रुकती ही नहीं। कोई स्वर की आरती है जो थमती ही नहीं। मैं काफी देर तक उस चिड़िया की निरर्थक किन्तु अनन्त अर्थमयी लगती-सी ध्वनिधार में बहता रहा, एकात्म होकर—निःशब्द, निस्पंद।

मेरे मित्र को छुट्टी थी और मन लगता नहीं था। वे इधर-उधर घूम-फिर कर मन लगाने का अभिनय करने को विवश थे। और जब मन लगाने का अभिनय किया जाता है, सच्ची चेष्टा नहीं, तब मन में ऊब पैदा होती है, थकान आती है, ठहराव नहीं आता, और हम इधर-उधर निरुद्देश्य घूमने के लिए अभिशप्त हो जाते हैं।

उस चिड़िया के सामने मन लगाने का प्रश्न नहीं था। बस वह जहाँ थी पूर्णता में थी। टू-टू कर रही है तो किये जा रही है—अनवरत, लगातार। नन्हीं-सी चिड़िया। मुट्ठी भर की चिड़िया। कहाँ से इतना दम मिला है उसे कि इतनी देर से टू-टू कर रही है! हम करें तो थक जायँ और वह चिड़िया है कि टू-टू किये जा रही है। लगता है जिसे पुकार रही है उसे बुलाकर रुकेगी, जिसे गुहार रही है उसे निहार कर दम लेगी, जिसके लिए कंठ फाड़ रही है उसे अँकवार कर रहेगी! यह है विकलता का वेग, आतुरता का आवेग, प्राणों की प्यास का उन्मेष जो उस चिड़िया को अथक, अलस, अश्रांत भाव से टू-टू किये जाने को प्रेरित-उत्प्रेरित कर रहा है।

हमारा इधर-उधर भटकना, मन लगाने के लिए जहाँ-तहाँ घूमना और जो-सो बातें करना आदि हमारे अस्वस्थ मन के परिचायक हैं। हम अपनी ओर देखने को तैयार नहीं हैं। हम आत्मान्वेषण, आत्मानुसंधान के लिए कुछ ठहरने, कुछ रुकने के लिए तैयार नहीं हैं। जरा सोचिए आप। हमारा आपका जीवन कैसा है? कैसी है हमारी जिन्दगी की रुटीन? कैसा है हमारा वेला-चक्र? क्या हम इससे संतुष्ट हैं? सुबह में देर-

सवेर उठना। चाय-पान, जलपान, बातें, स्नान-भोजन, दफ्तर आना-जाना, शाम को घूमना-टहलना, रात में गप्पें लड़ाना या सिनेमा, टी० वी०, वी० डी० ओ० देखना और फिर खा-पीकर सो जाना। औसतन हमारा यही दैनिक कार्य-क्रम है। जीवन के आखिरी दौर में अगर हम पीछे मुड़कर देखते हैं तो लगता है हमने कुछ किताबें पढ़ी-लिखीं, दफ्तर और फाइलों में अनेक क्षण गुजारे, प्यार किया, विवाह किया, बच्चे पैदा किये, उनकी शिक्षा-दिक्षा, ब्याह-नौकरी के लिए परेशानी उठायी और अंत में बीमारी मोल ले ली। अगर इसी बात के लिए हमें जन्म लेना है तो हम निश्चय ही अभिशप्त प्राणी हैं, अभागे हैं। कुछ ऐसा ही हाल हुआ था विद्यापति का और उन्होंने बुढ़ापे में गाया था—

> आध जनम हम निंदहि गमायनु
> जरा सिसु कत दिन गेला
> निधुवन रमनि रभसि रंगे मातल
> तोहें भजव कोन बेला
> माधव हम परिनाम निरासा।

कि मेरी आधी जिन्दगी तो सोने में बीत गयी। बचपन और बुढ़ापे में भी कितने ही दिन गुजर गये। बची थी जवानी। उसे भी मैंने निकुंजों में रमणियों के साथ विलास में बिता दिया। हे कृष्ण, तुम्हें कब भजता? अब तो केवल निराशा ही परिणाम में रह गयी है।

हम सब की कमो बेश यही हालत है। हमारी इसी हालत पर कबीर को रोना आया था—

> रात गँवायी सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
> हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥

हीरे-सी जिन्दगी हमारी कौड़ी के बदले जा रही है।

लेकिन नहीं, हम रोने-बिसूरने के लिए पैदा नहीं हुए हैं। हम व्यर्थ घूमने-फिरने के लिए नहीं जन्मे हैं। हम अभागे और अभिशप्त प्राणी नहीं हैं। हम हैं आनन्द के पुत्र, अमरों की संतान। आनन्द हमारा स्वरूप है, उल्लास हमारा उत्सव। लेकिन हम अपने स्वरूप को भूल बैठे हैं। गँवा बैठे हैं हम अपनी पहचान। विस्मृत हो गयी है हमें अपनी अभिज्ञा। और इसीलिए हम चिड़ियों की तरह देर तक एक ही सुर में वन्दना की बाँसुरी टेर नहीं सकते, आत्मा की पुकार अपने प्रभु तक पहुँचा नहीं सकते! स्वभावतः हमें घूमना ही पड़ेगा जहाँ-तहाँ अपना मन लगाने के लिए।

आवश्यकता इस बात की है कि हम थोड़ा ठहरें। कुछ रूकें। जरा अपने भीतर झाँकें। शान्त, स्थिर-चित्त होकर। हम पायेंगे कि हमारे भीतर वृत्तियों का, विकलताओं का, लालसाओं और कल्पनाओं का एक अश्वमेध यज्ञ वाला घोड़ा दौड़ रहा है और बेतहाशा दौड़ रहा है। कोई उसकी लगाम पकड़ने वाला नहीं है। हमें इस घोड़े को रोकना होगा। थामनी होगी इसकी लगाम। क्यों? इसलिए, कि हम घोड़े की तरह दौड़ने के लिए पैदा नहीं हुए। हम पैदा हुए हैं अपने स्वरूप को जानकर—आत्मस्थ देवता को जानकर आनन्द में, परमानन्द में प्रतिष्ठित होकर जीने के लिए। क्या करना होगा इसके लिए?

सबसे पहले है चयन। हमारी माँगों में सर्वप्रमुख माँग क्या है—इसका चयन। हमारी माँगें भौतिक हैं या आध्यात्मिक? दैहिक हैं या आत्मिक? सांसारिक हैं या ऐश्वरीय? अगर हम देह तल को भेद कर अपने शाश्वत स्वरूप को, आत्म-तत्त्व को या परमात्मा को उपलब्ध करना चाहते हैं, और हमें यह करना ही चाहिए, तो हमें फिर दृढ़ संकल्पशील होना चाहिए। संकल्प—शुद्ध और दृढ़ संकल्प दूसरी अनिवार्यता है। साधनाएँ स्वयं संकल्प की दृढ़ता का अनुगमन कर लेंगी। संकल्प की दृढ़ता से ही ईश्वर के न उपलब्ध होने की विकलता भी जगेगी और विकलता जितनी गहरी होगी, ईश्वरानुभूति उतनी शीघ्र होगी। बेचैनी जितनी घनी होगी, प्रभु के मंदिर का द्वार उतनी तेजी से खुलेगा। छटपटाहट जितनी तीव्र होगी, आनन्द की अखंड ज्योति, शीतल, सुमधुर, दिव्य और परमोज्ज्वल

ज्योति का मणिमय-मादक अवतरण भी उतना ही त्वरित होगा।

इसके लिए उम्र का कोई बंधन नहीं; कोई सीमा नहीं है। अभी से ही विकल हो जायँ हम। एक बार किसी व्यक्ति ने श्रीरामकृष्ण से कहा, "मेरी उम्र इस समय पचपन वर्ष है। मैं चौदह साल से ईश्वर की खोज में लगा हूँ। मैंने गुरु के उपदेशों का पालन किया, सभी तीर्थ क्षेत्र हो आया, अनेकों साधु-सन्तों के दर्शन किए, पर कुछ तो लाभ नहीं हुआ।" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले, "मैं तुमसे कहता हूँ, जो ईश्वर के लिए व्याकुल होता है, वह अवश्य उनके दर्शन पाता है। मेरी बात पर विश्वास रखो, धीरज रखो।"—यह आश्वासन वाणी स्वयं भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के मुख से निस्सृत हुई है। इसकी सत्यता में संदेह ही क्या हो सकता है?

कैसी विकलता चाहिए प्रभु के लिए? श्रीरामकृष्णदेव का अमृत-वचन है—"भगवान् को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार की व्याकुलता चाहिए, जानते हो? सिर में घाव हो जाने पर कुत्ता जिस प्रकार बेचैन होकर दौड़ता फिरता है, भगवान् के लिए भी उसी प्रकार की छटपटाहट चाहिए।" अत: यदि हममें यह विकलता हो, सिर में घाव हुए कुत्ते वाली विकलता, तो प्रभु के दर्शन में विलम्ब कहाँ है?

प्रभु सर्वत्र और सदैव हैं तो फिर यहाँ भी हैं और अभी भी हैं। अगर वे अभी हैं और यहीं हैं, तो हमें कहीं भटकने की क्या जरूरत? प्रभु जो परम ऐश्वर्यमय हैं, सुन्दर हैं और सुखमय हैं, सत्, चित् और आनन्दमय हैं और अभी हमारे समक्ष ही हैं तब फिर किस आनन्द की तलाश के लिए हम यहाँ-वहाँ भटकेंगे? लेकिन हमारे संकल्प में बल तो होना ही चाहिए। हमें हंस की तरह संकल्पी होना चाहिए। 'कै हंसा मोती चुगै, कै भूखै मरि जाहिं'—हंस या तो मोती चुगेगा, मोती खायगा अथवा भूख से मर जायगा। भूख से मर जाना उसे पसन्द है मगर मोती के अलावे कोई अन्य वस्तु खाना उसे स्वीकार्य नहीं। यह है जिद। यह है संकल्प। ईश्वरानुरागी को भी ऐसा ही हठी, ऐसा ही संकल्पी होना चाहिए। ईश्वर ही हमारा लक्ष्य है, ईश्वर, ईश्वर और एकमात्र ईश्वर। हम अपने उस आत्मस्वरूप को, चिदानंद संदोह को, परम निरंजन परमेश्वर को पाकर ही दम लेंगे, बाद में कुछ और करेंगे,—यही भाव है सबल संकल्प का। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"इसी जन्म में ईश्वर को प्राप्त करूँगा। तीन दिन में प्राप्त करूँगा। एक ही बार उनका नाम लेकर उन्हें प्राप्त कर लूँगा।' इस प्रकार की तीव्र भक्ति होनी चाहिए तभी भगवत्-प्राप्ति होती है। 'हो रहा है, हो जायगा' इस प्रकार की मन्द भक्ति ठीक नहीं।

स्वामी विवेकानन्दजी संकल्प की इसी दृढ़ता को पुरुषकार कहते थे। अपने एक शिष्य से उद्‌बोधन भरे शब्दों में उन्होंने कहा था—"मन में अनन्यता आने पर मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, इस जन्म में ही आत्मानुभूति हो जायगी। परन्तु पुरुषकार चाहिए। पुरुषकार क्या है जानता है? आत्मज्ञान प्राप्त करके ही रहूँगा; इसमें जो बाधा-विपत्ति सामने आयगी उस पर अवश्य ही विजय प्राप्त करूँगा—इस प्रकार के दृढ़ संकल्प का नाम ही पुरुषकार है। माँ, बाप, भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र, मरते हैं तो मरें, यह देह रहे तो रहे, न रहे तो न सही, मैं किसी भी तरह पीछे नहीं देखूँगा। जब तक आत्मदर्शन नहीं होता तब तक इस प्रकार सभी विषयों की उपेक्षा कर, एक मन से अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होने की चेष्टा करने का नाम है पुरुषकार; नहीं तो दूसरे पुरुषकार तो पशु-पक्षी भी कर रहे हैं। मनुष्य ने इस देह को प्राप्त किया है केबल उसी आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए; संसार में सभी लोग जिस रास्ते से जा रहे हैं, क्या तू भी उसी स्रोत में बह कर चला जायगा? तो फिर तेरे पुरुषकार का मूल्य क्या है?······किसी की परवाह न कर, कितने दिनों के लिए है यह शरीर? कितने दिनों के लिए हैं ये सुख-दुःख? यदि मानव शरीर को ही प्राप्त किया है, तो

भीतर की आत्मा को जगा और बोल—'मैंने अभयपद प्राप्त कर लिया है।"

लेकिन विषयानुराग और ईश्वरानुराग, संसार के प्रति प्रेम और प्रभु के लिए प्रेम साथ-साथ नहीं चल सकते। जब तक काम-कांचन के प्रति आसक्ति बनी रहती है तब तक ईश्वर में, आत्मानन्द में, मन नहीं लगता। यह नियम सब पर लागू है—वह चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी। अतः प्रभु में सच्ची निष्ठा के लिए, सात्विक श्रद्धा के लिए, वास्तविक अनुराग के लिए काम-कांचन से, विषयासक्ति से विरत होना नितान्त आवश्यक है। इसलिए आत्मानुभूति के लिए, ईश्वरानुभूति के लिए सर्वस्वत्याग करने का संकल्प लेकर चलना ही सच्ची जीवन-यात्रा है। इसे प्राप्त करने के लिए जो भी त्याग करना पड़े, करने को हमें तैयार रहना होगा। श्रीरामकृष्ण का अवतरण भी यही दिखाने के लिए हुआ था कि अनुभूति ही सार वस्तु है। इसी अनुभूति की प्राप्ति के लिए वे इस प्रकार छटपटाया करते थे जैसे भींगे तौलिए को निचोड़ा जा रहा हो। इसी से स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे—'मूल वस्तु है अनुभूति। उसे ही उद्देश्य या लक्ष्य जानना—मत-पथ रास्ता मात्र है। त्याग को ही उन्नति की कसौटी जानना। जहाँ पर काम-कांचन की आसक्ति कम देखो, वह किसी भी मत या पथ का अनुगामी क्यों हो—जान लेना, उसकी आत्मानुभूति का द्वार खुल गया है . . .।"

जब हमारी आत्मानुभूति का द्वार खुल जाता है तब फिर हमें मन लगाने के लिए इधर-उधर नहीं भटकना पड़ता है। तब फिर सारा जगत् ही अनन्त प्रकाशपूर्ण प्रभु के आलोक का क्रीड़ा-स्थल दिखाई पड़ने लगता है। तब पेड़ के पत्तों की मर्मर-ध्वनि में प्रभु की मुरली की तान सुनाई पड़ने लगती है, उड़ती हुई बालुका के कण में कोई रास-लीला दिखाई पड़ने लगती है और किसी पक्षी के टू-टू में प्रार्थना का कोई अनाहत संगीत फूटता-सा प्रतीत होने लगता है। क्यों न हम इस आनन्द की अनुभूति के लिए अभी से प्राण-पन से जुट जायँ – इस संकल्प के साथ कि—'कै हंसा मोती चुगैं कै भूखै मरि जाहि।'

भगवान् श्रीरामकृष्ण इसी आत्मानुभूति के लिए हममें सुदृढ़ संकल्प और दैवी प्रेरणा प्रदान करने की कृपा करें--यही मेरी उनसे प्रार्थना है। जय श्रीरामकृष्ण ! जय स्वामी जी !!

◘

यह संसार कायरों के लिए नहीं है। पलायन की चेष्टा मत करो। सफलता अथवा असफलता की चिन्ता मत करो। निष्काम संकल्प में अपने को लय कर दो और कर्तव्य करते चलो। समझ लो कि सिद्धि पाने के लिए जन्मी बुद्धि अपने आपको दृढ़ संकल्प में लय करके सतत कर्मरत रहती है। कर्म में तुम्हारा अधिकार है, पर इतने पतित मत बनो कि फल की कामना करने लगो। अनवरत कर्म करो, पर अनुभव करो कि कर्म के पीछे भी कुछ है। सत्कर्म भी मनुष्य को महान बन्धन में डाल सकते हैं। अतः सत्कर्मों के, अथवा नाम और यश की कामना , बन्धनों से मत बँधो। जिन्हें इस रहस्य का ज्ञान हो जाता है, वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं, अमर हो जाते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

(विवेकानन्द साहित्य नवम खंड, पृ० १९८)

कर्म योग

—स्वामी विवेकानन्द

मानसिक और भौतिक सभी विषयों से आत्मा को पृथक् कर लेना ही हमारा लक्ष्य है। इस लक्ष्य के प्राप्त हो जाने पर आत्मा देखती है कि वह सर्वदा ही एकाकी रही है और उसे सुखी बनाने के लिए अन्य किसी की आवश्यकता नहीं। जब तक अपने को सुखी बनाने के लिए हमें अन्य किसी की आवश्यकता है, तब तक हम दास हैं। जब 'पुरुष' जान लेता है कि वह मुक्त है, उसे अपनी पूर्णता के लिए अन्य किसी की आवश्यकता नहीं, एवं यह प्रकृति नितान्त अनावश्यक है, तब कैवल्य-लाभ हो जाता है।

मनुष्य चाँदी के चंद टुकड़ों के पीछे दौड़ता रहता है और उनकी प्राप्ति के लिए अपने एक सजातीय को भी धोखा देने में नहीं हिचकता; पर यदि वह स्वयं पर नियंत्रण रखे तो कुछ ही वर्षों में अपने चरित्र का ऐसा सुन्दर विकास कर सकता है कि यदि वह चाहे तो लाखों रुपये उसके पास आ जायें। तब वह अपनी इच्छा-शक्ति से जगत् का परिचालन कर सकता है। किन्तु हम कितने निर्बुद्धि हैं!

अपनी भूलों को संसार को बतलाते फिरने से क्या लाभ? इस तरह उनका परिहार तो हो नहीं सकता। अपनी करनी का फल तो सबको भुगतना ही पड़ेगा। हम यही कर सकते हैं कि भविष्य में अधिक अच्छा काम करें। बली और शक्तिमान के साथ ही संसार की सहानुभूति रहती है।

केवल वही कर्म, जो मानवता और प्रकृति को मुक्त संकल्प द्वारा अर्पित करने के रूप में किया जाता है, बन्धन का कारण नहीं होता।

किसी भी प्रकार के कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति कोई छोटा या नीचा काम करता है, वह केवल इसी कारण ऊँचा काम करनेवाले की अपेक्षा छोटा या हीन नहीं हो जाता। मनुष्य की परख उसके कर्त्तव्य की उच्चता या हीनता की कसौटी पर नहीं होनी चाहिए, वरन् यह देखना चाहिए कि वह कर्त्तव्यों का पालन किस ढंग से करता है। मनुष्य की सच्ची पहचान तो अपने कर्त्तव्यों को करने की उसकी शक्ति और शैली में होती है। एक मोची, जो कि कम-से-कम समय में बढ़िया और मजबूत जूतों की जोड़ी तैयार कर सकता है, अपने व्यवसाय में उस प्राध्यापक की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है, जो अपने जीवन भर प्रतिदिन थोथी, बकवास ही किया करता है।

प्रत्येक कर्त्तव्य पवित्र है और कर्त्तव्यनिष्ठा भगवत्पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है; बद्ध जीवों की भ्रान्त, अज्ञानतिमिराच्छन्न आत्माओं को ज्ञान और मुक्ति दिलाने में यह कर्त्तव्य-निष्ठा निश्चय ही बड़ी सहायक है।

जो कर्त्तव्य हमारे निकटतम है, जो कार्य अभी हमारे हाथों में है, उसको सुचारु रूप से सम्पन्न करने से हमारी कार्य-शक्ति बढ़ती है; और इस प्रकार क्रमशः अपनी शक्ति बढ़ाते हुए हम एक ऐसी अवस्था की

प्राप्ति कर सकते हैं, जब हमें जीवन और समाज के सबसे ईप्सित एवं प्रतिष्ठित कार्यों को करने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

प्रकृति का न्याय समान रूप से निर्मम और कठोर होता है। सर्वाधिक व्यवहार कुशल व्यक्ति जीवन को न तो भला कहेगा और न बुरा।

प्रत्येक सफल मनुष्य के स्वभाव में कहीं न कही विशाल सच्चरित्रता और सत्यनिष्ठा छिपी रहती है, और उसी के कारण उसे जीवन में इतनी सफलता मिलती है। वह पूर्णतया स्वार्थहीन न रहा हो, पर वह उसकी ओर अग्रसर होता रहा था। यदि वह सम्पूर्ण रूप से स्वार्थहीन होता, तो उसकी सफलता वैसी ही महान् होती, जैसी बुद्ध या ईसा की। सर्वत्र निःस्वार्थता की मात्रा पर ही सफलता की मात्रा निर्भर रहती है।

मानव जाति के महान् नेता मंच पर व्याख्यान देने की अपेक्षा उच्चतर कार्य-क्षेत्र के हुआ करते हैं।

यदि हम पवित्रता या अपवित्रता का अर्थ अहिंसा या हिंसा के रूप में लें, तब हम चाहे जितना प्रयत्न करें हमारा कोई भी कार्य पूर्णतया पवित्र या अपवित्र नहीं हो सकता। हम बिना किसी की हिंसा किये जी या साँस तक नहीं ले सकते। भोजन का प्रत्येक ग्रास हम किसी न किसी के मुँह से छीनकर ही खाते हैं, हमारा जीवन कुछ अन्य प्राणियों के जीवन को मिटाता रहता है। चाहे वह जीवन मनुष्य का हो, पशु का अथवा छोटे से कुकुरमुत्तों का, पर कहीं न कहीं किसी न किसी को हमारे लिए मिटना ही पड़ता है। ऐसा होने के कारण यह स्पष्ट ही है कि कर्म द्वारा पूर्णता कभी नहीं प्राप्त की जा सकती। हम अनन्त काल तक कर्म करते रहें, पर इस जटिल भूल-भुलैया से बाहर निकलने का मार्ग नहीं पा सकते। हम कर्म पर कर्म करते रहें, परन्तु उसका कहीं अन्त न होगा।

जो मनुष्य प्रेम और स्वतंत्रता से अविभूत होकर कार्य करता है, उसे फल की कोई चिन्ता नहीं रहती। परन्तु दस कोड़ों की मार चाहता है और नौकर, अपना वेतन। ऐसा ही समस्त जीवन में है। उदाहरणार्थ, सार्वजनिक जीवन को ले लो। सार्वजनिक सभा में भाषण देने वाला या तो कुछ तालियाँ चाहता है या विरोध-प्रदर्शन ही। यदि तुम इन दोनों में से उसे कुछ भी न दो, तो वह हतोत्साह हो जाता है, क्योंकि उसे इसकी जरूरत है। यही दास की तरह काम करना कहलाता है। ऐसी परिस्थितियों में, बदले में कुछ चाहना हमारी दूसरी प्रकृति बन जाती है। इसके बाद है नौकर का काम, जो किसी वेतन की अपेक्षा करता है; 'मैं तुम्हें यह देता हूँ और तुम मुझे वह दो।' मैं कार्य के लिए कार्य करता हूँ'—यह कहना तो बहुत सरल है, पर इसे पूरा कर दिखाना बहुत ही कठिन है। मैं कर्म ही के लिए कर्म करने वाले मनुष्य का दर्शन करने के लिए बीसों कोस सिर के बल जाने को तैयार हूँ। लोगों के काम में कहीं-न-कहीं स्वार्थ छिपा ही रहता है। यदि वह धन नहीं होता, तो शक्ति होती है, यदि शक्ति नहीं हो तो अन्य कोई लाभ। कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में स्वार्थ रहता अवश्य है। तुम मेरे मित्र हो, और मैं तुम्हारे लिए तुम्हारे साथ रहकर काम करना चाहता हूँ। यह सब दिखने में बड़ा अच्छा है; और प्रतिपल मैं अपनी सच्चाई की दुहाई भी दे सकता हूँ। पर ध्यान रखो, तुम्हें मेरे मत से मत मिलाकर काम करना होगा! यदि तुम मुझसे सहमत नहीं होते, तो मैं तुम्हारी कोई परवाह नहीं करता। स्वार्थ सिद्धि के लिए इस प्रकार का काम दुःखदायी होता है। जहाँ हम अपने मन के स्वामी होकर कार्य करते हैं, केवल वही कर्म हमें अनासक्ति और आनन्द प्रदान करता है।

एक बड़ा पाठ सीखने का यह है कि समस्त विश्व का मूल्य आँकने के लिए मैं ही मापदण्ड नहीं हूँ। प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यांकन उसके अपने भावों के अनुसार होना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक जाति एवं

देश के आदर्शों और रीति-रिवाजों की जाँच उन्हीं के विचारों, उन्हीं के मानदण्ड के अनुसार होनी चाहिए। अमेरिकावासी जिस परिवेश में रहते हैं, वही उनके रीति-रिवाजों का कारण है, और भारतीय प्रथाएँ भारतीयों के परिवेश की फलोपपत्ति हैं; और इसी प्रकार चीन, जापान, इंगलैण्ड तथा अन्य हर देश के सम्बन्ध में भी यही बात है।

हम जिस स्थिति के योग्य हैं, वही हमें मिलती है। प्रत्येक गेंद अपने अनुकूल छिद्र में ही गिरती है। यदि किसी की योग्यता दूसरे से अधिक है, तो संसार इस निरंतर चलते रहने वाले विश्वव्यापी समायोजन की प्रक्रिया में उसे जान लेगा। अतः बड़बड़ाने से कोई लाभ नहीं। यदि कोई धनी आदमी दुष्ट है, तो उसमें कुछ ऐसे भी गुण होंगे जिनके कारण वह धनी बना; और यदि किसी दूसरे व्यक्ति में ये गुण हैं, तो वह भी धनवान बन सकता है। शिकायतों और झगड़ों से क्या लाभ? उससे हम कुछ अधिक अच्छे तो बन नहीं जायँगे। जो अपने भाग्य में पड़ी हुई सामान्य वस्तु के लिए भी बड़बड़ाता है, वह हर एक वस्तु के लिए बड़बड़ायेगा। इस प्रकार सर्वदा बड़बडाते रहने से उसका जीवन दुःखमय हो जायगा और सर्वत्र असफलता ही उसके हाथ लगेगी। परन्तु जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य को पूर्ण शक्ति से करता रहता है, वह ज्ञान एवं प्रकाश का भागी होगा, और उसे अधिकाधिक ऊँचे कार्य करने के अवसर प्राप्त होंगे।

◘

भारतीय जीवनादर्श

—स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

त्याग और सेवा ही भारत के जातीय जीवनादर्श हैं—स्वामी विवेकानन्द के इस कथन में कोई नवीनता नहीं है। अति प्राचीन काल से भारतीयजनों ने इस आदर्श का अनुसरण कर अपना जीवन-गठन करने का प्रयास किया है। किन्तु सामाजिक जीवन में व्यापक रूप से इसके प्रयोग की चेष्टा कभी भी नहीं हुई। जिस समय भारतवासी विदेशी एवं विजातीय शिक्षा के प्रभाव से अभिभूत होकर इस सनातन आदर्श को भूल बैठे थे उसी समय स्वामीजी ने नये ढंग से नयी भाषा में सर्वत्र इसका प्रचार किया। उनकी प्रेरणा से उद्‌बुद्ध होकर भारत के विभिन्न प्रान्तो के बहुसंख्यक नर-नारी, विशेषकर युवकगण, त्याग और सेवा के आदर्श से अपने-अपने जीवन का गठन करने लगे और संघबद्धभाव से जन-साधारण की सेवा में उन सबने आत्म-नियोग किया। "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" इस प्रकार का विपुल बहुमुखी प्रयास भारतवर्ष में अतीत काल में कभी भी परिलक्षित नहीं हुआ।

समदर्शन की भित्ति पर प्रतिष्ठित त्याग और सेवा की प्रशंसा प्राचीन ग्रंथों में प्रचुर परिमाण में देखी जाती है। श्रीमद्‌भागवत से अनेक दृष्टान्तों को उद्धृत कर मैं इस सिद्धान्त के समर्थन का प्रयास करूँगा। यहाँ मूल श्लोकों के भावानुवाद दिये जायँगे। अनुवाद के बाद मूल-ग्रन्थ की स्कन्ध, अध्याय एवं श्लोक संख्या क्रमशः लिखित हैं।

एक बार नैमिषारण्य में दीर्घकालव्यापी एक यज्ञ अनुष्ठित हुआ था। उग्रश्रवा नामक सूत के उस यज्ञ

स्थल पर आगमन करने पर ऋषियों ने उनसे श्रीभगवान की लीला का वर्णन करने का अनुरोध किया। प्रसंगवश उग्रश्रवा द्वारा महाराजा परीक्षित के निर्जल-निराहार प्राण त्याग की कथा का उल्लेख करने पर शौनक ऋषि ने उनसे प्रश्न किया, 'यह कैसे संभव हुआ? परीक्षित का यह कार्य उचित हुआ, ऐसा प्रतीत नहीं होता। वे थे परम भक्त और भगवान के भक्तगण संसार की सुख-समृद्धि और कल्याण के लिए जीवित रहते हैं, अपने सुख-स्वाच्छन्द्य के लिए तो वे जीनन-धारण करते नहीं। राजा परीक्षित के मन में निर्वेद होने पर भी अनेक लोगों के आश्रय स्वरुप अपने शरीर का उन्होंने किस कारण से त्याग किया?" (१।४।१२)

कौशिकी नदी के तट पर गहन वन में शमिक मुनि का आश्रम। एक दिन मृगया के परिश्रम से थके-प्यासे राजा परीक्षित ने शमिक मुनि के आश्रम में उपस्थित हो उनसे पीने के लिए पानी चाहा। किन्तु ध्यान में निमग्न मुनि के कानों में राजा का वाक्य-प्रवेश नहीं कर सका। ध्यान का बहाना कर मुनि उनके प्रति अवज्ञा-प्रदर्शन कर रहे हैं—ऐसा सोचकर-राजा क्रोध से अभिभूत हो हिताहित के विवेक से शून्य हो गये तथा अपने धनुष की नोक से एक मृत सर्प को उठा कर मुनि के कंधे पर उन्होंने रख दिया। मुनि के बालक पुत्र शृंगी ने अपने पिता के इस प्रकार के अपमान का समाचार सुनकर राजा को शाप दिया—जिसके सात दिनों में तक्षक के दंशन द्वारा राजा परीक्षित की मृत्यु होगी। इसके बाद बालक शृंगी के ऊंचे स्वर में रोते-रोते पिता के सम्मुख उपस्थित होने पर मुनि का ध्यान-भंग हुआ। उन्होंने अपने कंधे से मृत सर्प को फेंक दिया और पुत्र से उसके रोने का कारण पूछा। बालक द्वारा राजा को शाप देने की बात सुनकर मुनि 'हाय-हाय' कर उठे एवं पुत्र द्वारा किये गये कार्य के लिए यह कहकर प्रार्थना की—"हे भगवान, तुम ही सब की आत्मा हो। तुम्हारे सेवक राजा परीक्षित ने कोई पाप नहीं किया। उन्हें अभिशाप देकर अल्प बुद्धि बालक ने जो पाप किया है उसके लिए उसे क्षमा करो।"

(१।१८।४७)

कर्दम ऋषि के औरस द्वारा देवहूति के गर्भ से नारायण कपिल के रूप में अवतीर्ण हुए थे। पुत्र के जन्म-ग्रहण करने के बाद कर्दम ऋषि द्वारा संन्यास ग्रहण कर लेने पर कपिल माता के द्वारा पालित हुए। एक बार माता देवहूति के द्वारा पुत्र से ज्ञानोपदेश प्रदान करने की प्रार्थना करने पर कपिल ने जो कहा वह भागवत के तृतीय स्कंध में संकलित है तथा वही मूल्यवान उपदेश कपिल गीता के नाम से प्रसिद्ध है। इस कपिल-गीता के तीन श्लोकों का भावानुवाद यहाँ दिया जा रहा है—"जो अल्प-बुद्धि व्यक्ति अपने तथा अन्य मनुष्यों या प्राणियों के बीच अणु मात्र भी भेद का दर्शन करता है वह बार-बार जन्म-मरण के महाभय से किसी भी तरह परित्राण नहीं पाता। अतएव, जो मैं सभी प्राणियों के भीतर आत्मरूप में समान भाव से विराजा करता हूं उसी मैं की सब में अभेद भाव से पूजा करना; तथापि सामाजिक विभिन्नता को स्वीकार कर विचार-पूर्वक जो बड़े हैं उनके प्रति सम्मान-प्रदर्शन, समान अवस्था के व्यक्तियों के प्रति बन्धुत्वपूर्ण व्यवहार एवं हीनावस्था से युक्त लोगों की नाना भावों से सेवा, उसी पूजा के भिन्न-भिन्न अंग होंगी।" (३।२९।२६-२७) "एक ही ईश्वर जीव रूप से सभी प्राणियों में स्थित हैं। यह दृढ़ निश्चय कर सबको पर्याप्त सम्मान प्रदान करते हुए मन-ही-मन प्रणाम करना।" (३।२९।३४)

दक्ष-यज्ञ के ध्वंस के बाद उसे पुनः आरम्भ करने के पहले नारायण ने प्रजापति दक्ष को कहा,—"जिस प्रकार मनुष्य अपने शरीर के हाथ, पैर, मस्तक आदि आदि विभिन्न अंगों में से किसी को दूसरे का अंग नहीं मानता उसी प्रकार मेरे भक्तगण अपने को अन्य सारे प्राणियों से भिन्न भाव से नहीं देखते।"

(४।७।५३)

वृत्रासुर-वध के लिए वज्र निर्माण के उद्देश्य से देवताओं द्वारा दधीचि मुनि से अपने शरीर की अस्थि

प्रदान करने के लिए प्रार्थना करने पर मुनिवर ने देवताओं से कहा था,—"दूसरे के दुःख से दुःख एवं दूसरे के सुख से सुख का अनुभव करना ही अव्यय धर्म है। ज्ञानी व्यक्ति इसी प्रकार धर्म का आचरण करते हैं। इस संसार में क्षणभंगुर देह और धन सम्पत्ति के द्वारा जो दूसरों का उपकार करने में उत्साही नहीं होते वह बड़े ही दुःख का विषय है एवं मानसिक दीनता का परिचायक है। (१०।१०।९-१०)

राजा युधिष्ठिर के अनुरोध से देवर्षि नारद ने उनको सनातन मानव-धर्म की कथा सुनायी थी "सभी प्राणियों में, विशेषकर मनुष्यों में ईश्वर विराजमान हैं, ऐसा मानकर, अथवा दूसरों और अपने में कोई भेद नहीं है, ऐसा विश्वास कर अपने अन्न आदि सब के बीच यथायोग्य रूप से बाँट दिया करना।" (७।११।१०) "खाने, पहनने और जीवित बचे रहने के लिए जिस परिमाण में वस्तुओं की आवश्यकता है मात्र उतनी वस्तुओं पर ही मनुष्य का अधिकार है। इसके अतिरिक्त धन या भोग्य वस्तु का अपने लिए जो संचय करना चाहता है, वह चोर है। चोर की भाँति उसे उपयुक्त दंड मिलना उचित है।" (७।१४।८)

देव और दानवों द्वारा समुद्र मन्थन के समय जब हलाहल विष निकलकर पृथ्वी पर फैलने लगा तब प्राणों के भय से भीत जीव समूह अत्यन्त कातर हो उठे। उनकी व्याकुलता देखकर अपने अन्तःकरण में वेदना का अनुभव कर भगवान शंकर ने देवी पार्वती को कहा—"प्राणों के भय से डरे हुए जीवों को अभय प्रदान करना मेरा कर्त्तव्य है। असहाय व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने में ही समर्थ व्यक्ति की सामर्थ्य की सार्थकता है। जीवों में स्वभावतः पारस्परिक विरोधिता रहने पर भी साधु व्यक्तिगण दूसरों की सहायता के उद्देश्य से अपने क्षणभंगुर जीवन का विसर्जन कर देते हैं। मनुष्य की सहायता करने से सर्वात्मा हरि प्रसन्न होते हैं एवं हरि के प्रसन्न होने से चराचर जगत के साथ मैं भी उनकी प्रसन्नता प्राप्त करूँगा। अतएव, मैं यह विष पान करूँगा; जगत् का कल्याण हो।'

(८।७।३८-४०)

शिव द्वारा विषपान किये जाने की प्रशंसा करते हुए शुकदेव ने कहा था,—"साधु व्यक्ति प्रायः दूसरों के दुःख से दुःख का अनुभव करते हैं एवं उस दुःख के निवारण का प्रयासी हो जाते हैं। स्वभावतः विश्वात्मा भगवान की श्रेष्ठ उपासना का यह एक रूप है।

(८।७।४४)

वामन द्वारा प्राथिक तीन डेग धरती का दान करने के लिए बलि राजा के उद्यत होने पर उनके गुरू शुक्राचार्य ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। तब बलि ने गुरु से कहा, "सब की अपेक्षा अपने प्राणों का विसर्जन करना कठिन कार्य है; किन्तु साधु जन दूसरों के कल्याण-साधन के उद्देश्य से यह दुष्कर कर्म भी सानन्द करते हैं। दधीचि, शिवि आदि महाप्राण व्यक्तियों ने इस प्रकार का आचरण किया है। दूसरों के कल्याण के लिए अपने सर्वस्व का त्याग कर पाने की अपेक्षा क्या और भी कोई महत् कर्म है? मनस्वी दयालु लोग प्रार्थी व्यक्ति की प्रार्थना की पूर्ति के द्वारा उसकी दुर्गति समाप्त कर देते हैं।" (८।१०।७ एवं १०)

राजा रन्तिदेव परम दयालु थे। दीन-दुःखियों के बीच अपना सर्वस्व वितरण कर देने के कारण वे दरिद्र हो गये एवं पत्नी और पुत्र के साथ वन में उन्होंने आश्रय ग्रहण किया। वहाँ लगातार ४० दिनों तक निराहार रहने के बाद कुछ खाने-पीने की सामग्री उन्हें प्राप्त हुई थे। अपने लोगों के बीच उसे बाँट कर खाने का उपक्रम करते ही हैं कि तभी एक भूखे ब्राह्मण द्वारा आकर भोजन की याचना करने पर राजा ने सानन्द अपना हिस्सा उसे खाने को दिया। ब्राह्मण के चले जाने के बाद एक शूद्र के द्वारा आकर भोजन की प्रार्थना करने पर रन्तिदेव ने उसे अन्न का दूसरा भाग प्रदान कर दिया। ब्राह्मण या शुद्र सब के बीच हरि समान भाव से विराजमान हैं, ऐसा अनुभव कर राजा ने दोनों को समान श्रद्धा के साथ भोजन कराया था। शूद्र के

चले जाने पर आया एक अन्त्यजर (चाण्डाल जाति का एक आदमी) कुछ कुत्तों को साथ लेकर। उस व्यक्ति ने अत्यन्त कातर भाव से अपने और अपने कुत्तों के लिए भोजन की याचना की। राजा ने उन सबके प्रति अनेक सम्मान प्रदर्शित कर आदर के साथ बचा हुआ भोजन उन सब को खाने को दिया एवं कुत्तों तथा उनके पालक को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। इसके बाद अवशिष्ट रह गया थोड़ा-सा जल। प्यास से ओष्ठागत प्राण राजा उस जल को पीने की ज्योंही चेष्टा करते हैं उसी क्षण प्यास से कातर एक चाण्डाल 'प्यास से मर रहा हूँ; पानी-पानी' कह कर चीत्कार करते-करते राजा के समीप उपस्थित हुआ। राजा ने श्रद्धापूर्वक पीनें का पानी उसे प्रदान कर मन ही मन कहा, "प्यास से कातर इस व्यक्ति को उसके प्राणों की रक्षा के लिए प्रयोजनीय जल प्रदान करने के फलस्वरूप मेरी भूख, प्यास, शारीरिक दुर्वलता आदि समाप्त हो गयी। मैं ईश्वर से स्वर्ग, अष्टसिद्धि या मुक्ति किसी वस्तु की प्रार्थना नहीं करता। मेरी एक-मात्र प्रार्थना है, मैं सभी तापित प्राणियों के अन्तःकरण में वर्तमान रहकर उनके सन्तापों का स्वयं भोग कर सकूँ एवं इसके फलस्वरूप वे सब सारे दुःखों के भोग से त्राण पा सकें। (९।२१।१२-१३)

राजा के मनोबल की परीक्षा के उद्देश्य से ब्रह्म आदि देवगण ब्राह्मण, चाण्डाल आदि का वेश धारण कर आये थे। वे सव राजा के त्याग एवं सेवा की प्रवृत्ति का परिचय पाकर सन्तुष्ट हुए एवं अपने-अपने स्वरूप में राजा के सामने प्रकट हुए। सर्व प्रकार की कामनाओं-वासनाओं से रहित रन्तिदेव ने उन सबको प्रणाम किया, किन्तु देवगण के द्वारा उन्हें वर देना चाहने पर भी उन्होंने किसी वस्तु के लिए प्रार्थना नहीं की।

सामान्य सन्यासी संसार त्याग देता है, बाहर निकल कर भगवान् का चिन्तन करता है। सच्चा संन्यासी तो संसार में ही रहता है; पर उसका बनकर नहीं। जो आत्म-निग्रह करते हैं, जंगल में रहते हैं और अतृप्त वासनाओं की जुगाली करते रहते हैं, वे सच्चे सन्यासी नहीं हैं। जीवन-संग्राम के मध्य डटे रहो। सुप्तावस्था में अथवा एक गुफा के भीतर तो कोई भी शान्त रह सकता है। कर्म के आवर्त और उन्माद के वीच दृढ़ रहो और केन्द्र तक पहुँचो और यदि तुम केन्द्र पा गये तो फिर तुम्हें कोई विचलित नहीं कर सकता।

—स्वामी विवेकानन्द

(विवेकानन्द साहित्य : नवम खंड : पृ० १९८)

स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रीय पुनर्गठन

—स्वामी यतीश्वरानन्द

(प्रस्तुत सारगर्भित लेख श्रीसारदा मठ, दक्षिणेश्वर में आयोजित विवेकानन्द जन्मशताब्दी समारोह में रामकृष्ण मठ व मिशन के तत्कालीन सह अध्यक्ष स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज द्वारा २२ जनवरी, १९६३ ई० को प्रदत्त उद्‌घाटन भाषण का अनुवाद है। मूल बंगला से हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ नागपुर के ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य ने किया है। सं०)

स्वामीजी की जन्मशताब्दी भारतवर्ष तथा विश्व के लिये एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। उनके गुरुदेव श्रीरामकृष्ण और उन्होंने भारत और विश्व के कल्याणार्थ जन्म ग्रहण किया था। श्रीठाकुर और श्रीमाँ के शुभागमन के फलस्वरूप दक्षिणेश्वर-मन्दिर से एक आध्यात्मिक भावधारा बह निकली है, वही बाद में चलकर बेलुड़ मठ में केन्द्रीभूत हुई। वही आध्यात्मिक शक्ति ठाकुर के शिष्यों, विशेषकर स्वामीजी के माध्यम से संपूर्ण जगत् में फैल गयी है और असंख्य नर-नारियों के जीवन में प्रेरणा प्रदान कर चुकी है और अब भी कर रही है। प्रभु की कृपा से मुझे भारतवर्ष, अनेक पड़ोसी देशों और दूर के यूरोप, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में उनकी महिमा का कुछ-कुछ दर्शन पाने का सौभाग्य मिला है। इसी आधार पर कह रहा हूँ कि उनका जन्म संपूर्ण जगत् के मंगल के लिये हुआ है।

हमारे समकालीन संन्यासियों को स्वामीजी का दर्शन पाने का सौभाग्य नहीं हुआ। वे १९०२ ई० में अखण्ड के घर चले गये थे। उसके चार वर्ष बाद मैं रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा के संपर्क में आया। उनदिनों भारतवर्ष में और विशेषकर बंगाल में राष्ट्रीयता के महान् आन्दोलन का सूत्रपात हो रहा था। स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यान तथा लेखों ने इस आन्दोलन को आध्यात्मिक भाव से प्रेरणा प्रदान की। हमारे ही समान विश्वविद्यालय के बहुत से विद्यार्थियों ने इस राष्ट्रीय आन्दोलन में हाथ बटाया। इसके साथ ही हमलोग ब्रह्मचर्य पालन, ठाकुर-स्वामीजी के उपदेशों का पाठ और साधन-भजन भी करते रहे। स्वामीजी द्वारा प्रवर्तित सेवाधर्म को अपनाकर हमलोग मनुष्यों और यहाँ तक कि पशुओं की भी सेवा में लग गये। परन्तु लगा कि सभी कार्यों में विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है, अन्यथा अहित होने की संभावना है।

श्रीरामकृष्ण वचनामृत और स्वामीजी के ग्रन्थादि हमलोग विशेष मनोयोग के साथ पढ़ा करते थे। स्वामी जी को हमलोगों ने अपने जीवन के आदर्श के रूप में अपना लिया था। शुरू में तो हमलोगों ने स्वामीजी को महान् देशभक्त, निर्भीक समाजसुधारक, वक्ता और प्रचारक के रूप में ही स्वीकार किया था, पर उस समय हम यह न समझ सके थे कि उनकी सभी क्रिया-कलापों के मूल में उनकी आध्यात्मिकता निहित थी।

दैवइच्छा और अपने महा-सौभाग्यवश हमलोग श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्यों के संपर्क में आये। उनमें ठाकुर के मानसपुत्र और संपूर्ण मठ के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी शिवान्नद, स्वामी सारदानन्द और स्वामी तुरीयानन्द आदि थे। हमलोगों का उद्देश्य आदि सुनकर उनलोगों ने हमें खूब उत्साहित किया और कहा कि इसके लिए सभी विषयों में विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है अन्यथा ठीक-ठीक और अच्छे ढंग से सेवा करना संभव नहीं। उनलोगों ने यह

भी बताया कि स्वामीजी का सेवाधर्म उनके गहन आध्यात्मिकता की नींव पर प्रतिष्ठित है। "तुमलोग भी साधन-भजन करके आध्यात्मिकता के पथ पर जितना ही आगे बढ़ोगे, उतना ही समझ सकोगे कि भगवान् ही अपने अंतर में और सर्वभूतों में विराजमान हैं और उतनी ही तुमलोगों की जीवसेवा शिवसेवा में परिणत होगी।"

स्वामीजी के गुरुभाइयों ने हमलोगों को यह भी समझाया कि श्रीरामकृष्ण के माध्यम से जो शांत आध्यात्मिक भावधारा प्रवाहित हुई थी, वही अब स्वामीजी के द्वारा महागर्जन के साथ सर्वत्र फैल रही है। पूजनीय तुरीयानन्द महाराज कहा करते थे कि अमेरिका की ओर रवाना होने के पूर्व स्वामीजी ने उन्हें कहा था—"हरिभाई, तुमलोग धर्म शब्द का क्या अर्थ लेते हो यह मैं नहीं जानता; मैं तो सिर्फ इतना ही समझता हूँ कि मेरा हृदय सबके लिए अनुभव करना सीख गया है।" उनलोगों ने इसका अर्थ यह बताया कि स्वामी विवेकानन्द का पवित्र व शान्त हृदय अनंत भगवत्-हृदय के साथ एकाकार हो गया था। इसीलिए वे सर्वभूतों के प्रति सहानुभूति संपन्न हुए थे। हमलोगों को भी उसी पथ का अनुसरण करना होगा। ठाकुर के चरणों में बैठकर ही स्वामीजी यह समझ सके थे—"जीव पर दया नहीं—शिवज्ञान से जीवसेवा।" कारण—"जो कुछ है सो तू ही है।" अपनी इस विराट् अनुभूति के पश्चात् ही स्वामीजी ने कहा था—"चाहे जितना भी कष्ट क्यों न हो, मैं अपने जगत् के सभी दुःखी-दरिद्रों की सेवा के लिए हजारों बार जनम लेने को तैयार हूँ।" संसार में अनेकों प्रकार के दरिद्र हैं; धन से दरिद्र, स्वास्थ्य से दरिद्र, नैतिक रूप से दरिद्र और आध्यात्मिक दृष्टि से दरिद्र। ये सभी स्वामीजी की सेवा और सहानुभूति के अधिकारी हैं। इसीलिये उन्होंने कहा कि सभी रूपों में नारायण की सेवा करनी होगी।

भविष्यद्रष्टा स्वामीजी ने काफी वर्षों पूर्व ही कह दिया था कि चीनवासियों में एक विशेष जन-जागरण आयेगा और वे लोग भारतवर्ष पर भी आक्रमण कर उसे वशीभूत करने का प्रयास करेंगे। जिन स्वामीजी ने चीनियों द्वारा भारतवर्ष पर आक्रमण की बात कही है, उन्होंने ही फिर अपनी योगदृष्टि से अपनी मातृभूमि के महाजागरण का दर्शन इस सम्बन्ध में भी भविष्य-वाणी की है—"हमारी भारतमाता अपनी सुदीर्घ गहन निद्रा से जाग रही है, किसी में भी यह क्षमता नहीं कि इस जागरण को रोक सके। जाग्रत भारत फिर सोने का नहीं। बाहर की कोई भी शक्ति उसे दबाकर न रख सकेगी। श्रीभगवान् का अलंघ्य आदेश है कि इस बार भारतवर्ष का अभ्युदय अवश्यम्भावी है, देश की दुर्गतिप्राप्त जनता के सुख-समृद्धि के दिन आसन्न है।"

भारतवर्ष के अधःपतन का दर्शन कर वे अपनी अभूतपूर्व भाषा में कहते हैं—"हमलोग आलसी हैं, कर्म विमुख हैं एकता साधन में अक्षम हैं, भ्रातृप्रेम से रहित हैं और एक-दूसरे से घृणा व ईर्ष्या करते हैं—यही हमारी वर्तमान सोचनीय अवस्था का स्वरूप है।" फिर स्वामीजी हमारे पुनरुद्धार के लिये निम्नलिखित उपायों का भी निर्देश कर जाते हैं—

(१) हमें धर्म के ऊपर प्रतिष्ठित होना होगा। किसी भी सामाजिक या राजनैतिक मतवाद का आन्दोलन करने के पूर्व देश को आध्यात्मिकता की बाढ़ से प्लावित कर दो। आत्मतत्त्व का प्रचार करने के बाद लौकिक या तुम्हारी इच्छा के अनुरूप जो कोई भी ज्ञान अपने आप आयेगा। धर्म-समन्वय की स्थापना ही भावी भारत के गठन की पहली सीढ़ी है।

(२) शक्ति ही हमारी एकमात्र आवश्यकता है। आत्मा अनन्त, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ है। उठ कर खड़े हो जाओ और अपना स्वरूप व्यक्त करो। आत्म-चेतना जाग्रत होने पर देखोगे कि क्षमता, महिमा, निष्ठा, पवित्रता आदि जो कुछ भी वाञ्छनीय है, अपने आप ही आ जायेगी।

(३) शुद्ध देशभक्तों का गठन करना होगा। लौह के समान दृढ़ पेशी, इस्पात के समान कठोर स्नायु,

और प्रचण्ड इच्छाशक्ति से सम्पन्न बलिष्ठ मनुष्यों की आवश्यकता है।

(४) हमें ऐसी शिक्षा की जरूरत है, जिसके द्वारा चरित्रगठन हो, मन की शक्तियों में वृद्धि हो, बुद्धिबल का विकास हो और व्यक्ति अपने पाँवों पर खड़ा हो सके। ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्रबल आये और मनुष्य-निर्माण हो। पाश्चात्य विज्ञान के साथ वेदान्त का समन्वय और इसके साथ ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और आत्म-विश्वास शिक्षा के मूलमंत्र होंगे।

(५) जनसाधारण की सर्वांगीण उन्नति करनी होगी। एक शिक्षायतन के द्वारा गण-उन्नति का भाव प्रचारित करना होगा। उसमें शिक्षा प्राप्त प्रचारकगण गरीबों के द्वार पर लौकिक व आध्यात्मिक शिक्षा का वितरण करेंगे। जो शिक्षा और संस्कृति उच्चवर्ग की शक्ति का स्रोत है, उसे निम्नश्रेणियों में आत्मसात करना होगा। वर्ण साम्य लाने का यही उपाय है।

(६) नारी जाति की उन्नति अत्यन्त आवश्यक है। सबसे पहले तो यह देखना होगा कि हिन्दू नारी सतीत्व के आदर्श को पृथ्वी की सम्पूर्ण सम्पत्तियों से भी उच्च स्थान दे। फिर उन्हें इतिहास, पुराण, धर्म, कला, विज्ञान, गृहस्थी, पाककला, स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षा देनी होगी। अन्यान्य विषयों के साथ ही महिलाओं को साहस और वीरता का भी अर्जन करना होगा, आत्म-रक्षा का कौशल सीखना होगा। इस ओर ध्यान रखना कि ये बालिकाएँ बाद में चलकर आदर्श गृहिणियाँ बन सकें।

स्वामीजी की इच्छा थी कि भारत के आध्यात्म-विज्ञान और पश्चिम के जड़-विज्ञान के समन्वय से प्राच्य और पाश्चात्य के बीच एकता स्थापित हो। भारत के धर्मप्रचारकगण पाश्चात्य देशों में जायेंगे और वहाँ से पाश्चात्य विज्ञान के शिक्षा का फल भारत में लायेंगे।

भगवान् श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ द्वारा प्रदर्शित मत का प्रचार करने के लिये स्वामीजी ने मठों की स्थापना करने की इच्छा व्यक्त की थी। इसीलिये उन्होंने बेलुड़ मठ स्थापित करते समय एक स्त्री मठ स्थापित करने की भी योजना बनायी थी। श्रीमाँ के जन्मशताब्दी वर्ष (१९५४ ई०) में उनकी यह कामना कार्य रूप में परिणत हुई। स्वामीजी की इच्छा थी कि संन्यासियों की ही भाँति संन्यासिनियाँ भी सांसारिक कामना-वासना का त्यागकर, ब्रह्मनिष्ठ हो—'आत्मनो मोक्षार्थ जगद्धिताय च' के व्रत में अपना जीवन निवेदित करें, राष्ट्रहित के कार्य में—विशेषकर नारी शिक्षा के विस्तार में आत्मनियोग करें।

देश इस समय बुरी अवस्था से गुजर रहा है। अतः स्वामीजी की जन्मशताब्दी के उपलक्ष्य में उनकी स्मृति रक्षणार्थ ईंट-पत्थर आदि जड़ पदार्थों से विराट् भवन आदि का निर्माण उचित न होगा। आज हमें उनके भाव का प्रचार करने का अभूतपूर्व मौका मिला है। हमें अपना जीवन उनके आदर्श में ढाल लेना होगा और उसी आदर्श का सर्वत्र प्रचार करना होगा। वर्तमान काल में स्वामीजी की स्मृतिरक्षा का यही सच्चा उपाय है। स्वामीजी ने कहा था—"First let ourself be god, then help others to be gods."—सर्वप्रथम हमें देवत्व में प्रतिष्ठित होना होगा, तत्पश्चात् सभी को देवत्व की प्राप्ति में सहायता करनी होगी।

स्वामीजी का यह उपदेश हम सदा-सर्वदा स्मरण रखकर और कार्य रूप मे परिणत कर, मूर्त रूप में उनकी स्मृतिरक्षा कर अपना जीवन धन्य कर सकें—श्रीठाकुर, श्रीमाँ और श्रीस्वामीजी के चरणों में मेरी यही प्रार्थना है।

□

स्वराज्य

—स्वामी चिद्भासानन्द
रामकृष्ण मिशन, वेलुड़ मठ।

श्रीरामकृष्ण के पार्षद स्वामी रामकृष्णानन्दजी के अनुसार राजनीति इन्द्रियों की स्वाधीनता का नाम है, और धर्म ठीक इसके विपरीत इन्द्रियग्रान से स्वाधीनता। संक्षेप में इन्द्रियों की दासता या यथेच्छाचारिता ही राजनीति का प्रच्छन्नरूप है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात हमारे नैतिक जीवन का स्तर इतना पतित होता जा रहा है कि हमारे दैनंदिन पारिवारिक जीवन की शृंखला की कड़ी भी टूटती जा रही है ओर बहिर्जगत का राग-रंग और सुहावना चाकचिक्य—वाह्य—आडम्वर के सिवाय कुछ भी नहीं है।

आज का मनुष्य नाना प्रकार की कुण्ठाओं और विरोधाभाषों से जर्जरित है। यह पश्चिम की वस्तुतांत्रिक सभ्यता की देन है। मानव संवेदना की सर्वोत्कृष्ट भावना आज लुप्त प्राय है। जातिवाद, रंगभेद, भाषा-विवाद, सांप्रदायिकता आदि विषयों को लेकर मनुष्य संकीर्ण मतवादों को अपनाकर अपने आपको खो बैठा है।

बाह्य जगत के एक भौगोलिक भूमिखण्ड के ऊपर शासन करना ही स्वाधीनता नहीं है। हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक विडम्बना है कि पूर्ववर्ती राजे-महाराजे अपने वैयक्तिक सुख-स्वाच्छन्दयों के लिए युद्ध करते रहे, और कुछ क्षेत्रों में विजय भी पायी, पर हमारे तथाकथित इतिहासकार उनके इस संग्राम को देश प्रेम की उपाधि देते रहे। उनमें कहाँ तक देश प्रेम की भावना रही होगी यह अनुसंधान और अन्वेषण का विषय है। उनमें यदि राष्ट्रीय भावना विद्यमान रहती, तो वह निश्चय ही धरोहर के रूप में भावी पीढ़ी को प्राप्त होती और आज हम इस प्रकार छिन्न-भिन्न रूप में अपने को कभी नहीं पाते।

विश्व बन्धुत्व और शुद्ध मानवता केवल बात की बात है, अन्यथा जीवन में इन शब्दों का प्रयोग केवल विद्वानों द्वारा बुद्धि विश्वास के हेतु किया जाता है।

प्राचीनकाल से भारत अपने अन्तर्जगत और बहिर्जगत को अपनी प्रज्ञाजनित साधना की सिद्धि द्वारा एक मेक कर उसके उपलब्ध सम्भूतमनीया द्वारा परिदृश्यमान जगत को 'एकोहं बहुस्याम्' के भाव से परिलक्षित करने का आदी रहा है, पर यह हमारा दुर्भाग्य है कि पश्चिम से आयतित वस्तुतांत्रिक धर्म ने, जिसे विजेता अंग्रेज अपने साथ लाये थे, भारत की स्वतः प्राचीन धर्म, संस्कृति और अमूल्य सम्पदा को झकझोर दिया—जिसके फलस्वरूप हम अपनी आस्था हमारे सार्वभौम एवं शाश्वत धर्म पर गवाँ बैठे।

लोकमान्य तिलक ने कहा था—स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। निस्सन्देह—पर वह स्वराज्य-सिद्धि :—

स्वयमेव राजत इति स्वराट्,
स्वराडव स्वराज्यम् तस्य सिद्धिः।

इसका आशय है कि वह राज्य या सत्ता जो स्वमेव में अवस्थित है—जिसकी उपलब्धि अर्थात् निरावरण स्वप्रकाश परमात्मा रूप प्राप्ति : (१)

हमारे अतीत के अपने ही संस्कारों के आलिङ्गन-पास में वद्ध होने के कारण इस महत्तम सत्ता के शाश्वत

सत्य पर प्रतिष्ठित होने से वंचित है। श्रीमद्भागवत के प्रथम अध्याय में भी इसका उल्लेख आता है :

जन्मादस्य यतो ह्न्वयादि
मरतश्चाथेष्विभिज्ञ—स्वराट् ॥

इसका अर्थ है स्वमैव राजते स्वस्तु एत: सिद्धज्ञान-मित्यर्थ :

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि हमलोग स्वरूपत: पूर्ण हैं फिर भी वासना के जंजाल में फँसकर अपनी नित्य अनन्त स्वाधीनता को खोकर मोहाध होकर अनित्य एवं झूठे आवरण में फँसकर भोग्य वस्तु के गुलाम वनकर जन्मजन्मान्तर के शोकवृत्य के कारण स्वकृत संविन्, प्रारव्ध और क्रियमान कर्मफलों को भोगते रहते हैं। सिकन्दर जैसे महान कुरूप भले ही समस्त पृथ्वी को जय कर लें पर अपने मन में उदित वासना के एक-कण या विंदु के ऊपर वे क्या विजय प्राप्त कर सकते हैं? कदापि नहीं।

हिन्दू राष्ट्रीय जीवन में तीन लक्ष्यों पर विशेष ध्यान दिया गया है—जिसका इन तीनों पर सामन्जस्य विधान करना अनिवार्य समझा गया। वे तीन हैं—धर्म, अर्थ और काम। इसके पश्चात् चरम पुरुषार्थ—मोक्ष है जिसे लेकर हम भारतीय जीवन वेद की व्याख्या कर सकते हैं। ज्ञानोदय के लिए ही उपर्युक्त तीन कर्मों का विधान है जो भारतीय संस्कृति की पराकाष्ठा है। धर्म से उत्पन्न सार्वभौम शक्ति के आधार पर ही राष्ट्र का उद्भव, गठन और प्रजातंत्र की अवस्था है। ऐश्वरीय उत्पतिवाद ही इस संकेत का परिचायक है। प्रकान्तर में शासकवर्ग की स्वार्थपरता के कारण यह भ्रष्ट हो गया।

राष्ट्रीय आन्दोलन के क्षेत्र में श्री अरविंद ने अपने क्रांतिकारी जीवन को शीतोष्ण यज्ञ के रूप में न्योछावर किया था। भारत माता को उन्होंने साक्षात् महाशक्ति के रूप में देखा था।

इस आदर्श को समायित करने के हेतु श्रीअरविंद ने बड़ोदा में १९०४ ईस्वी में 'भवानी मन्दिर' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी। मानिकतला षड्यन्त्र मामले में इस पुस्तक का प्रचार किया गया था। यह पुस्तक पहाड़ के ऊपर अवस्थिता मातेश्वरी भवानी के प्रति उत्सर्गीकृत उनकी एक मन्दिर प्रतिष्ठा करने की योजना थी। लेखक (श्रीअरविंद) के अनुसार 'भवानी' अनन्तशक्ति स्वरूपा दुर्गा, काली, राधा, लक्ष्मी एवं साक्षात जगज्जननी थीं......"।

निखिल जगत के प्राणियों की स्रष्टा। उनके अनुसार शक्ति के अभाव में ही भारत को हार स्वीकारना पड़ रहा है। उसके अभाव में ही हमारा उद्यम मृतप्राय है। शक्ति के अभाव में प्राणों में शक्ति का संचार नहीं हो रहा है। (२)

यह भारत का ही सौभाग्य रहा है कि उसने धर्मनीति को ही राजनीति की बुनियाद मानी। पर आजकल के राजनैतिकगण तो कहने को तो 'भारत-माता की जय' अवश्यमेव कहते हैं, पर यथार्थ में वे अपनी ही जय कहते और कहलवाते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि राजनैतिक मनोभाव पोषण करने वाले ऐसे अनेक हैं जो धर्म के प्राङ्गण में अनाधिकार प्रवेश कर अपने सुप्त वासनाओं की सिद्धि के निमित्त पथ-प्रशस्त करते रहते हैं और जनसाधारण को भ्रांत करने में नहीं चूकते।

भारत के उत्कृष्टतम आदर्श के लिए ही फ्रेडरिक मेक्समूलर का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है :

"अगर कोई मुझसे पूछे कि इस अनन्त आकाश के तले कोई ऐसा भूखण्ड है जहाँ मनोजगत का सर्वोच्च विकास हुआ है—जहाँ मानसिक समस्याओं का समयुक्त अन्वेषण तथा समाधान किया गया हो और ऐसे लोगों का ध्यान आकर्षित किया हो जो प्लेटो और काण्ट जैसे दिग्गज पंडितों के ग्रंथों को अधिगत किए हों, तो मैं अनायास ही भारत की ओर इंगित करूँगा।... और हमलोग यूरोप के अधिवासीगण जो रोम और युनानी साहित्य के चिंतन से प्रभावित और उपकृत हैं, हमारी संशोद्धात्मक पद्धतियां जो हमारे आभ्यन्तरीण

जीवन को श्रेष्ठतर और अधिक व्यापक, विश्वजनीन और सुदृढ़ बनाने में समर्थ होने के साथ वस्तुत: केवल इस मानवीय जीवन के लिए नहीं बल्कि एक पूर्णतया परिवर्तित और अनन्त जीवन के सर्जन में रूपायन कर सकता है, तो पुन: मैं भारत की ओर ऊंगली उठाऊँगा"।

कहना अनुचित नहीं होगा कि भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवनधाराओं में विभिन्नता होने पर भी अंततोगत्वा एक ही समुद्र 'ब्रह्म' में सबका विलयन होता है। अतएव हमलोग सभी 'ब्रह्मवादी' हैं—ब्रह्मवाद ही हमारा रक्षाकवच है जिसके द्वारा हम आधुनिक संघर्षों—से बच सकते हैं। हमारी कर्मसूची इन्द्रियों के दमन अर्थात् वासनाओं का त्याग है। युगावतार श्रीरामकृष्ण स्पष्ट और सरल भाषा में स्वाधीनतम अर्जन करने के लिए निम्नलिखित उपाय बतलाते हैं जो कि एकमेव साधन है।

"श्रीरामकृष्ण—कामिनी कांचन जीव को बांध लेते हैं।

जीवन की स्वाधीनता चली जाती है। कामिनी से ही कांचन की आवश्यकता होती है, जिसके लिए दूसरों की गुलामी की जाती है, फिर स्वाधीनता नहीं रहती, फिर तुम अपने मन का काम नहीं कर सकते"...... जिन्होंने ईश्वर लाभ कर लिया है ... वे यथार्थ देखते हैं कि स्त्रियों में ब्रह्ममयी माता का अंश है, और उन्हें माता मान कर उनकी पूजा करते हैं।" (३)

यही सारांश में योगदर्शन के प्रवृत्ति-पुरुष भावों का विलयन या समुच्चय, वेदांत एकमेवाद्वितीयम् का ज्ञान, भक्तियोग का सेव्य-सेवक मिलन है। इसी साधना में सिद्ध होकर साधक कृतकृत्य होकर चरमज्ञान को प्राप्त होता है।

स्वामी विवेकानन्द का सिंहनाद 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'—उठो जागो जब तक अभीप्सित वस्तु को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक बराबर उसकी ओर बढ़ते जाओ। .... उठो जागो शुभ मुहूर्त आ गया है—हिम्मत करो, डरो मत। हमें 'अभी' : निर्भय होना होगा तभी हम अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे। (४)

वस्तुत: स्वाधीनता अपने स्वरूप की प्राप्ति है, नहीं तो परतंत्रता है।

---

१. श्री गंगाधरेन्द्र सरस्वती विरचिता—स्वराज्य सिद्धि: चेन्नपुरी : पृष्ठ १

२. "पुलिस रिपोर्ट रामकृष्ण मिशन" बंगला—ले० लाडली मोहन रायचौधुरी पृ० ६७ कलकत्ता।

३. श्री रामकृष्ण वचनामृत, रामकृष्ण मठ, नागपुर १म भाग : पृष्ठ १८७।

४. विवेकानन्द संचयन, रामकृष्ण मठ, नागपुर पृ० १७६।

आह्वान

—ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य
रामकृष्ण मठ, नागपुर।

पुराणों की प्रतीकात्मक भाषा में
सागर-मंथन की कथा है;
इस युग में भी
भौतिक-विज्ञान रूपी मंदराचल को मथानी बना,
देव-असुरों ने मिल;
प्रकृति रूपी सागर को मथा है।

निकला है अमृत
पान किया है गोरे देवताओं ने छककर,
लक्ष्मी भी आयीं
सुख-सुविधा-विलासिता के साधनों का रूप धर,
कारों व टैंकों के रूप में उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला,
जम्बो-जेट रूपी ऐरावत भी मिला,
धन्वन्तरि भी प्रकटे हैं
औषधि विज्ञान व शल्यचिकित्सा को लेकर।

और अब अंत में निकला है हालाहल विष
स्पर्धा, महायुद्ध व अणु-परमाणु बमों के रूप में,
संशय में है जग का भविष्य
संकट में है प्राणिमात्र का अस्तित्व
लोग त्रस्त हैं, भयग्रस्त हैं,
त्राहि-त्राहि मची है सब ओर
विपत्ति के बादल घहरते हैं घोर।

हे महादेव भारत! उठो!
इस संकट की घड़ी में कहाँ ध्यानमग्न बैठे हो
आओ! इस रेडियोसक्रिय विष का पान करो,
मैत्री, करुणा, और विश्वबंधुत्व का मार्ग दिखा
जग को अभयदान करो।

जन्म दिवस के अवसर पर

भगवान महावीर और उनका संदेश

विवेकानन्द यादव 'विवेक'
फूलपरास, दरभंगा।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी सम्पूर्ण विश्व के लिये एक महान क्रान्ति का युग माना जाता है जिसमें अनेक क्रान्त द्रष्टा महापुरुषों, अनोखे विचार वाले मनीषियों और आध्यात्मिक दिग्गजों ने जन्म ग्रहण कर सारे संसार के चिन्तनजगत में क्रान्ति की एक व्यापक उथल-पुथल मचा दी। एक ओर जहाँ ग्रीस में पाइथागोरस, सुकरात और प्लेटो के नवीन चिन्तन यूनानियों में वैचारिक क्रान्ति पैदा कर रहा था, वहाँ दूसरी ओर परसिया (फारस) में जरथुस्त्र के आध्यात्मिक ओज से भरे उपदेश लोगों में एक नयी चेतना को जागृत कर रहा था। सदा से अध्यात्म का शंखनाद करने वाला भारतबर्ष इस संक्रमण काल में भला कैसे चुप बैठा रहता !

उस काल में इस भारत-भूमि पर कर्मकाण्डी पुरोहितों का भारी बोलवाला हो गया था। उपनिषद प्रगति ज्ञान मार्ग मानों होमकुण्डों से निरन्तर उठने वाले धुओं से तिमिराच्छन्न हो चुका था। नित्य यज्ञवेदियों पर बध किये जाने वाले पशुओं के आर्त्तनाद से दिशायें प्रकम्पित हुआ करती थी। 'यावत् जीवितं सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतम् पिवेत्" जैसे सिद्धान्त वाक्यों से लोग भ्रमित से हो रहे थे। ऐसे ही कठिन काल में, ऐसी ही जरूरत की घड़ी में धर्म-रक्षार्थ, दिकभ्रमित लोगों को राह दिखाने के लिये, करुणा के वश, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को तदनुसार ३० मार्च सन् ईस्वी पू० ५९९ के दिन इतिहास प्रसिद्ध वैशाली गणतंत्र के अन्तर्गत कुंडग्राम या क्षत्रिय कुंड के राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला के गर्भ से भगवान महावीर ने जन्म ग्रहण किया। इतिहास में ये वर्द्धमान महावीर के भी नाम से जानें जाते हैं और महात्मा गाँधी इनमें अहिंसा भाव की पराकाष्ठा को देखकर 'अहिंसा का अवतार' कहते थे।

नाम के अनुरूप यह क्षत्रिय राजकुमार शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से बाल्यावस्था से ही 'महावीर' थे। एकबार शैशव में वे बाल सखाओं के संग वृक्ष पर चढ़ने-उतरने का खेल खेल रहे थे कि अचानक एक भयंकर विषधर आकर उस वृक्ष के तने से लिपट गया। सभी बच्चे भयभीत हो भाग चले। परन्तु यह निर्भीक बालक तनिक भी न डरा। साथियों के मना करने के बावजूद उन्होंने उस विशाल सर्प को मुट्ठी से पकड़कर दूर फेंक दिया। साहसी होने के साथ-साथ ये पढ़ने-लिखने में भी अत्यंत कुशाग्र बुद्धि के थे। किंवदन्ती है कि जब आठ वर्ष की आयु में महावीर को अध्ययनार्थ ऋषि कलाचार्य के पास भेजा गया तो देवराज इन्द्र बालक की परीक्षा लेने के उद्देश्य से वृद्ध व्यक्ति के वेश में महावीर के समक्ष उपस्थित हुये और उनसे बहुत सारे कूट प्रश्न किये। जब बालक महावीर ने धीरता-पूर्वक सारे प्रश्नों का उत्तर दिया तो कलाचार्य महा अचंभित हुये। तब वृद्ध वेशधारी इन्द्र ने कहा यह बालक असाधारण प्रतिभा और ज्ञान का धनी है। इसे सामान्यज्ञान देने की आवश्यकता नहीं है।

राजसी वातावरण में यह मेधावी बालक चन्द्रकला की भाँति दिनानुदिन बढ़ने लगा। धीरे-धीरे युवावस्था को पहुंचे और कभी कभी पर्यटन को भी राजमहल से बाहर निकलने लगे। तीक्ष्ण बुद्धिसंपन्न महावीर के सामने सामाजिक

बुराइयाँ छिपी न रह सकी। वे देखने—बढ़ी धर्मान्धता के पीछे समाज का आर्थिक जीवन अस्तव्यस्त सा हो गया। सच्चे धर्म के स्थान पर क्रियाकाण्ड चल पड़ा है। समाज वर्णाश्रम धर्म से उत्पन्न छुआछूत की भावना रुढ़िग्रस्त है, ममता और सौहार्द के स्थान पर घृणा और दौर्मनस्यता का भाव सर्वत्र व्याप्त हो गया है। वे और भी देखते—समाज में स्त्रियों का स्थान अत्यन्त नगण्य माना जाता है। अर्द्धांगिणी और सहधर्मिणी जैसे शब्दों का व्यवहार केवल उच्च परिवारों में ही प्रचलित है। स्त्री-पुरुष और बालकों का दास-दासी के रूप में क्रय-विक्रय भी कम भयावह और लज्जास्पद न था। ये तमाम सामाजिक और धार्मिक विकृतियाँ युवक महावीर को सोचने के लिये मजबूर कर दिया करती थी। दीर्घचिन्तन-मनन के बाद महावीर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बिना प्रव्रज्या का पथ ग्रहण किये इन समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। और माता-पिता के समक्ष धीर-भाव से एकदिन इन्होंने अपना निर्णय समुपस्थित किया। स्वभावतः माता-पिता के हृदय में बहुत बड़ा आघात लगा। जो सपने इतने दिनों से सँजोकर रखे थे, जो अरमान दिल में बने थे, वे टूटते नजर आये। पर महान पुरुषों के माता-पिता भी महान होते हैं। उन्होंने सिर्फ इतनी विनती की कि वे हमदोनों के निधन के बाद प्रव्रज्या ग्रहण करें। और महावीर ने उनकी बात मानली।

माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् पूर्वनिर्णय के अनुसार महावीर चल पड़े हैं गौरवमय प्रव्रज्या के पथ पर। उनका यह गृह त्याग करुणा और दया से पूर्ण था; क्योंकि बड़ी तीव्रता के साथ उन अनगिनत दुःखपूर्ण आवाजों को वे अपने अन्तरतल में अनुभव कर रहे थे जो चीख-चीख कर कह रही थी, "हमारी विषमताओं, हमारी उपेक्षाओं, हमारी असमर्थताओं, हमारे अभाव और दीनता को आकर देखो! उसका समाधान करो।" और वे चल पड़े हैं मोह की स्वर्णमयी शृंखला को तोड़कर। सम्पूर्ण जनपद में यह बात बिजली की तरह फैल गयी। जहाँ व्यक्ति एक कानी-कौड़ी छोड़ने को तैयार नहीं, वहाँ वे सर्वस्व त्यागकर किस महत्तर वस्तु की प्राप्ति के लिये निकल पड़े हैं? सचमुच बड़ा ही कौतूहल हुआ होगा जनसमुदाय के बीच। ऐसा ही विस्मय मैत्रेयी के मन में भी हुआ था जब याज्ञवल्क्य संन्यास ग्रहण करने जा रहे थे। जब महावीर राजमार्ग से होते हुये खण्डवन की ओर जा रहे थे, तभी जन-समुद्र को चीरता हुआ, हरिकेशी नाम का चाण्डाल इनकी ओर बढ़ने लगा तो लोग एक स्वर से चीख पड़े—"रोको! इसे रोको! यह अछूत है।" पर हरिकेशी बढ़ता ही गया। वह जैसे ही इस महामानव के चरणों पर गिरना चाहा कि उन्होंने झट उठाकर उस अछूत को गले लगा लिया। और दूसरी भयंकर क्रांति मच गयी होगी जनमानस में। प्रत्येक आचरण अपूर्व। "आचण्डाला प्रतिहतरयो यस्य प्रेमप्रवाहो" की वाणी निश्चय ही संगीत बनकर उदार पुरुषों के हृदय से निकल पड़ी होगी। महावीर का मिशन यहाँ से प्रारंभ हो गया था। एक नयी व्यवस्था का सूत्रपात हो चुका था उस दिन।

प्रव्रजित होने के बाद, साढ़े बारह वर्ष तक महावीर ने तपस्या, मौन और एकान्त चिन्तन में अपना समय व्यतीत करते रहे। बड़ी उग्र तपस्या के पश्चात् एकदिन जृम्भिका ग्राम के निकट ऋजुवाला नदी के तट पर शालवृक्ष के नीचे इन्हें अति दुर्लभ कैवल्य का बोध हुआ। दिव्यज्ञान की प्राप्ति के साथ ही इनके सामने से रहस्यों का परदा एक-एक कर उठने लगा। सारे प्रश्नों का समाधान हस्तामलक की भाँति प्रत्यक्ष हो गया। और अब मानवता के मन्दराचल भगवान महावीर के नाम से जाने लगे। इन्हें २४ वाँ तीर्थंकर भी कहा जाता है। तीर्थंकर वही हैं जो संसार सागर से पार उतरावे।

तत्पश्चात् वे मानव कल्याणार्थ, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने हेतु, सर्वत्र धर्म और शांति स्थापनार्थ तत्त्वोपदेश देने लगे। उनकी धर्म सभा का 'समवशरण' कहा जाता था। उसमें प्रत्येक प्राणी को जाने का अधिकार था। राजा-रंक, अमीर-गरीब,

गृहस्थ-संन्यासी यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी वहाँ एक साथ बैठकर शांतिपूर्वक धर्म श्रवण करते थे। पशु-पक्षियों का इस प्रकार शांतिपूर्वक धर्मश्रवण करना बड़ी ही अद्भुत बात है। यह भगवान महावीर के आध्यात्मिक ओज और अहिंसा की परम-सिद्धि को प्रदर्शित करता है। लगातार तीस वर्षों तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में उनका धर्म-बिहार होता रहा। उनका उपदेश जनभाषा में होता था और उसे 'दिव्यध्वनि' कहा जाता था। उनका कहना था—'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमोत्ववो"। धर्म उत्कृष्ट मंगल है। वह अहिंसा, संयम और तपरूप है। इन तीन शब्दों में धर्म की सम्पूर्ण आत्मा आ गयी है। यद्यपि महावीर संसार के कर्त्ता-धर्त्ता ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे, पर वे आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारते थे। उनके अनुसार आत्मा की तीन कोटियाँ हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जब आत्मा बाह्य पदार्थों के साथ तल्लीन होकर उसके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो उसे बहिरात्मा कहते हैं। जब वह अपने आपको बाह्य पदार्थ से भिन्न तथा उत्कृष्ट समझता है तब अन्तरात्मा कहलाता है। तथा कैवल्य की अवस्था में जब वह अहंविहीन हो जाता है तो परमात्मा। इस तरह इनका पथ उपनिषद प्रणीत ज्ञान मार्ग के बहुत निकट था। ईश्वर को न भी मानते हुये वे कर्म के सिद्धान्त, पुनर्जन्म तथा पुरुषार्थ में विश्वास रखते थे। अहिंसा तो इनके धर्म का सार तत्त्व था ही। साथ-साथ वे सत्य के भी बहुत बड़े पुजारी थे। वे "नरो वा कुंजरो" वाला सत्य में विश्वास नहीं रखते थे। उनका एक बड़ा ही प्रसिद्ध श्लोक है—

"निच्चकालप्पमत्तेणं मुसावाय विवज्जणं"
"भासियत्वं हियं सच्चं निच्चा उत्तेणदुक्करं।"

"अर्थात् सदा अप्रमत्त और सावधान रहते हुये असत्य को त्यागकर हितकारी सत्य बोलना चाहिये। इस प्रकार का सत्यबोलना बड़ा दुष्कर होता है।"

सत्य की ठीक-ठीक साधना करने वाले साधक इस श्लोक की गंभीरता को समझ पाते हैं। सचमुच इस प्रकार का सत्य बोलना बड़ा ही 'दुष्कर' होता है।

उन्होंने व्यक्ति स्वातंत्र और विचारों की स्वतंत्रता पर सर्वत्र जोर दिया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है—"जो मैं कहता हूँ उसे तर्क की कसौटी पर कसकर और अनुभूति से आत्मसात करके ही स्वीकार करो, अन्यथा यह सत्य तुम्हारा नहीं बन पायेगा। आगम प्रमाण रूप चाबुक की मार से, तर्कों के प्रबल प्रहार से और मेरे व्यक्तित्व के प्रभाव से जो मैंने कहा उसे यदि ऊपर से स्वीकार भी कर लिया जाय तो कोई लाभ न होगा। वह तो एक नये अंध विश्वास और प्रपंच को ही जन्म देगा।"

इस प्रकार ७२ वर्ष की परिपक्व आयुपर्यन्त दिव्यज्ञान की मोती बिखेड़ते हुए दीपावली के दिन इसे युग के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर भौतिक देह परित्याग कर, महानिर्वाण को प्राप्त हुये। जैन मान्यतानुसार दीपावली पर्व उन्हीं के निर्वाण की स्मृति में मनाया जाता है। यद्यपि भगवान महावीर अभी हमारे बीच नहीं हैं तथापि उनके द्वारा प्रचारित अहिंसा, सत्य, संयम और तपस्या का उपदेश युग-युग तक भटकती मानवता को ज्योति राह दिखाती रहेगी। सदा ज्ञान-ज्योति फैलाने वाले इस महापुरुष की स्मृति में दीपावली पर्व का मनाया जाना बड़ी ही औचित्यपूर्ण, सम्मानप्रद और सुखप्रद है।

नारद-भक्ति-सूत्र

—श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ॥११॥

लोके (सांसारिक कार्य-समूहों के बीच) [एवं] वेदेषु (वेदविहित कर्म-समूहों के बीच) तदनुकूलाचरणं (जो सब कर्म इष्ट सेवा के अनुकूल हैं उन्हीं सब कर्मों का आचरण) तद् विरोधिषु उदासीनता (ईश्वर के प्रतिकूल विषय में उदासीनता) [कहा जाता है] ॥११

सांसारिक और शास्त्रविहित कर्म-समूहों के बीच जो सब इष्ट-चिन्तन में सहायक हैं, उन सब कर्मों का अनुष्ठान करने पर ईश्वर के प्रतिकूल विषय-समूहों के प्रति उदासीनता आ जाती है ॥११

नौवें सूत्र में निरोध के जो दो लक्षण कहे गये हैं उनमें एक हुआ—इष्ट-स्मरण के विरोधी विषयों के प्रति उदासीनता। किन्तु यह उदासीनता कहने से कोई निषेध नहीं समझना चाहिए, मात्र यह एक विधान है। विधान हुआ—लौकिक और वैदिक जिन सब कर्मों के अनुष्ठान से नित्य उनका स्मरण करने का सुयोग रहता है, प्रेम-भक्ति बढ़ जाती है वे सब कर्म ही भक्त के लिए करणीय हैं। भक्त लोक-प्रचलित या वेद-विहित किसी काम्य-कर्म का अनुष्ठान नहीं करेंगे। उस प्रकार का कर्म प्रेम-भक्ति के लाभ का विरोधी है, इष्ट-स्मरण के प्रतिकूल है। किन्तु जिन सब कर्मों के द्वारा भक्ति में वृद्धि होती है, भक्त उन सब कर्मों का आचरण करेंगे।

किसी लौकिक प्रेम का सम्बन्ध यदि ईश्वर का विस्मरण करा दे तो उसका भी त्याग करना होगा।

"भवनाथ ने कहा, लोगों के साथ मनान्तर रहने से मन कैसा करता है। ऐसा होने से सबको तो प्रेम कर नहीं पाता हूँ।' उत्तर में श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, 'पहले एक बार बातचीत करने—उन सबके साथ प्रेम करने की चेष्टा करोगे। चेष्टा करने से यदि नहीं हो तब फिर वह—सब नहीं सोचना। ईश्वर के शरणागत होओ, उनका चिन्तन करो,—उनको छोड़कर अन्य लोगों के लिए मन खराब करने की जरूरत नहीं है। ····· क्या किया जाय? यदि दूसरों का मन नहीं पाया गया, तो रात-दिन क्या वही सोचना होगा? जो मन ईश्वर को दूँगा, उस मन को इधर-उधर बेकार खर्च करूँगा? मैं कहता हूँ, माँ, केवल तुम्हें चाहता हूँ। मनुष्य को लेकर क्या करूँगा?"

भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वंशास्त्र रक्षणम् ॥१२॥

निश्चयदार्ढ्यात् ऊर्ध्वं (इष्ट-निष्ठा दृढ़ नहीं होने तक) शास्त्र रक्षणं (शास्त्र—वाक्यों को मानकर चलना) भवतु (हो) ॥१२

इष्ट-निष्ठा दृढ़ नहीं होने तक शास्त्रों के अनुसार चलना ही उचित होगा ॥१२

जबतक भाव-भक्ति पक्की नहीं होती है, तबतक शास्त्रों की बातों को मानकर चलना होगा—शास्त्र विहित कर्मों का अनुष्ठान करना होगा; बल पूर्वक कर्म-त्याग नहीं करना है। आश्रम-भेद से कर्म-समूह भिन्न-भिन्न होते हैं। गृही भक्त को गृहस्थाश्रम-विहित उचित एवं संन्यासी को संन्यास-आश्रम-विहित शास्त्रीय कर्म करते रहना होगा।

"सभी क्यों त्याग करेंगे? उपयुक्त समय नहीं होने

पर त्याग नहीं होता। बल पूर्वक क्या कोई त्याग कर पाता है? भोग और कर्म का अन्त नहीं होने तक व्याकुलता नहीं आती है।....''

भक्ति पक्की होने पर भी भक्त कभी-कभी लोक-शिक्षा के लिए कर्म करते हैं।

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं एक दिन कहा था, "संध्या क्या हो गयी? संध्या होने पर फिर तम्बाकू नहीं पीता हूँ। संध्या होने पर सब कर्मों को छोड़कर हरि-स्मरण करना। शरीर का रोआँ यदि गिना नहीं जाय तो समझना कि संध्या हुई है।"

"जब एक बार हरि या एकबार रामनाम लेने पर रोमांच हो, अश्रुपात हो, तब निश्चयपूर्वक समझो कि संध्यादि कर्म और नहीं करने होंगे। तब कर्म त्याग का अधिकार हुआ—कर्म का अपने आप त्याग हो जाता है। तब केवल रामनाम, या हरिनाम, या केवल ॐकार जपने से ही काम हो जायगा। संध्या गायत्री में लय होती है और गायत्री ॐकार में लय होती है।"

"कर्म छोड़ना तो संभव होती नहीं। मैं चिन्तन करता हूँ, मैं ध्यान करता हूँ-यह भी कर्म है भक्ति-लाभ करने पर विषय कर्म अपने आप कम हो जाते हैं। और अच्छे नहीं लगते। मिश्री का शरवत पीने पर गुड़ का शरवत कौन पीना चाहेगा?"

"कर्म कितने दिन करना होगा? जितने दिन तक ईश्वर को प्राप्त नहीं किया जाय। उनको प्राप्त करने पर सब हो जाता है। तब पाप-पुण्य के पार हो जाता है।"

"ईश्वर-लाभ नहीं होने पर कोई पूर्णतया कर्म-त्याग नहीं कर पाता है।.... फल होते ही फूल झड़ जाता है। भक्ति है फल और कर्म फूल।"

शास्त्र के प्रयोजन के सम्बन्ध में भगवान कहते हैं—"जो शास्त्र-विधि को अस्वीकार कर अपनी इच्छा के अनुसार कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, वे इस जीवन में पुरुषार्थ या सुख कुछ भी नहीं पाते, शरीर-त्याग करने पर स्वर्ग या मुक्ति नहीं प्राप्त करते। अतएव, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के निर्णय में शास्त्र ही तुम्हारा नियामक है; शास्त्र का विधान जानकर तुम उसके अनुसार कर्म करो।'

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत:।
न स: सिद्धिमवाप्नोति न सुख: न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

गीता १६।२३-२४

अन्यथा पातित्याशङ्कया ॥१३॥

अन्यथा (अन्यथा करने पर) पातित्याशङ्कया (पतित हो जाने की आशंका है) ॥१३

ईश्वर-लाभ के पहले बल लगाकर कर्म का त्याग करने पर साधन-पथ से भ्रष्ट हो जाने की आशंका है॥ १३

बल-पूर्वक कर्म का त्याग करने से यथार्थ त्याग नहीं होता। हृदय के आसन पर इष्ट को बैठा नहीं पाने से विषय-वासना उस आसन को जबर्दस्ती दखल कर लेगी—भले ही बाहर से कितना भी त्याग का प्रदर्शन क्यों न हो! इसीलिए भक्ति के परिपक्व नहीं होने तक भक्ति-लाभ के अनुकूल कर्म करते रहना होगा। घाव के सूखने के पहले जबर्दस्ती पपड़ी छुड़ा कर फेंक देने से घाव तो नहीं मिटता, किन्तु पीड़ा बढ़ जाती है।

"पूर्णतया कर्म त्याग करना तो संभव नहीं है। तुम्हारी प्रकृति ही तुमसे कर्म करायगी। भगवान् ने अर्जुन को कहा था—इच्छा करने मात्र से ही तुम युद्ध से निवृत्त नहीं हो पाओगे; तुम्हारी प्रकृति तुमसे युद्ध करायेगी। चाहे तुम इच्छा करो या न करो।"

लोकोऽपि तावदेव भोजनादि व्यापारस्त्वाशरीर धारणावधि ॥१४॥

लोकः अपि (लौकिक कर्मसमूह भी), तावत् एव (तब तक—जब तक भक्ति पक्की न हो तब तक), तु (किन्तु), भोजनादि व्यापारः (आहार आदि दैहिक कर्म समूह) आशरीरधारणावधि (जब तक शरीर है तब तक रहेंगे) ।।१४

जब तक निश्चय में दृढ़ता, भक्ति में परिपक्वता, नहीं आती—तब तक लौकिक कर्मों को करते जाना होगा, किन्तु शरीर की रक्षा के लिए भोजन आदि प्रयोजनीय कर्म, जब तक शरीर है, तब तक रहेंगे ॥१४

बारहवें सूत्र में देवर्षि नारद नें जब तक भक्ति पक्की नहीं होती तब तक शस्त्रविहित कर्मों के अनुष्ठान की प्रयोजनीयता बतायी है। इस सूत्र में उन्होंने कहा है कि लौकिक आचार आदि का भी बल-पूर्वक त्याग करना उचित नहीं है। वेश-भूषा, चाल-चलन आदि कार्यों में हमलोगों को सामाजिक रीति-नीति के साथ तालमेल रखकर चलना होगा, नहीं चलने से निन्दा का पात्र होना होगा। किन्तु जिनकी भक्ति पक्की हो गयी है, उनके लिए इन सब सामाजिक और लौकिक आचार-व्यवहारों को फिर पूरे तौर पर मानकर चलना संभव नहीं है, बल्कि निष्प्रयोजन एवं किसी-किसी क्षेत्र में इष्ट-चिन्तन में बाधक समझकर वे इन सब को मानकर नहीं चलते—अधिकांश क्षेत्र में इतना सोच विचार करने के लिए न तो उनकी मानसिक अवस्था रहती है, न उन्हें इसका अवसर ही रहता है।

ज्ञानी या भक्त को भोजन आदि की भी कोई आवश्यकता नहीं है—इस प्रकार की एक प्रचलित भ्रान्त धारणा को निरस्त करने के लिए श्रीनारद कहते हैं कि जबतक शरीर है तबतक खाना-पीना, मल-मूत्र-त्याग आदि शारीरिक चेष्टाएँ रहती हैं। किन्तु किसी कामना-वासना को लेकर शारीरिक भोगों की लालसा को मिटाने के लिए वे इन सारे कार्यों में प्रवृत्त नहीं होते। यदि शरीर-धारण के लिए उनकी कोई चेष्टा देखी जाती है तो उसका उद्देश्य है—इष्ट के साथ विलास या जगत की सेवा करना।

श्रीरामकृष्णदेव सदैव कमर में वस्त्र लपेट कर नहीं रख पाते थे। कभी खुलकर गिर जाता था। अथवा कभी कपड़े बगल में लेकर निकलते थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर नें ब्रह्म समाज के उत्सव में भाग लेने के लिए आमंत्रित कर जब उनसे एक कुरता पहनकर आने का अनुरोध किया, तब उन्होंने कहा, 'बाबुओं की तरह सज-धज कर मैं नहीं जा पाऊँगा।'

कोई मूर्ति-पूजक की स्थिति को पार कर गया या नहीं, इसकी कसौटी यह है :—"जब तुम कहते हो 'मैं', तब तुम्हारे मन में तुम्हारा शरीर आता है या नहीं ? यदि 'मैं' कहने पर तुम्हारे विचार में तुम्हारा शरीर आ जाता है, तो तुम अब भी मूर्ति-पूजक हो।"

—स्वामी विवेकानन्द
विवेकानन्द साहित्य
नवम खंड : पृष्ठ-१९६

सर्व समर्थ ईश्वर

प्रस्तुति : स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर।

श्रीरामकृष्ण के गृही भक्त एवं रानी रासमणि के दामाद श्रीमाथुर बाबू अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त धनी व्यक्ति थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से वे तर्क संगत एवं बुद्धि की कसौटी पर खरी बातों को ही स्वीकारा करते थे। केवल श्रद्धा या आस्था के बल पर किसी बात को स्वीकार करने के पक्ष में वे नहीं थे।

एक बार माथुर बाबू एवं श्री रामकृष्ण में एक प्रसंग पर बहस छिड़ गयी। माथुर बाबू ने कहा--"ईश्वर को भी नियम के अनुसार चलना पड़ता है। जो नियम उन्होंने एक बार बना दिया उसे रद्द करने का सामर्थ्य उन्हें भी नहीं रहता।"

श्रीरामकृष्ण ने कहा—"कैसे पागल के समान तू बोल रहा है। अरे जिसने नियम बनाया वह अपना नियम बनाया वह अपना नियम जब चाहे रद्द कर दे और उसके बदले कोई दूसरा नियम शुरू कर दे। यह तो उनकी इच्छा की बात है।"

पर यह बात माथुर बाबू को किसी भी प्रकार ठीक नहीं लगी।

माथुर बाबू ने तर्क किया कि लाल फूल के पेड़ में सदा लाल फूल ही लगेगा; क्योंकि यही नियम उसने एक बार बना दिया है।

इस पर श्रीरामकृष्ण ने कहा "अरे भाई। उसके मन में जो आएगा वही वह करेगा, तब लाल और सफेद फूल की कौन-सी बात है।" पर मथूर बाबू ने श्रीरामकृष्ण की बात नहीं मानी।

दूसरे दिन जब श्रीरामकृष्ण बगीचे की तरफ जा रहे थे कि रास्ते में उन्होंने देखा कि लालजवा के पेड़ में एक ही डाली पर दो फूल फूले हैं—एक सुर्ख लाल और दूसरा शुभ्र श्वेत—उस दूसरे पर लाल रंग की आभा तक नहीं है। उस डाली को तोड़ कर श्रीरामकृष्ण ने माथुर बाबू को दिखाया कहा कि यह देखो एक ही डाली में दो रंग के फूल खिले हैं। मथुर बाबू ने आश्चर्य से देखा और कहा कि "आपकी बात ठीक थी, मैं आपसे हार गया।" इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर माथुर बाबू ने ईश्वर की सर्व-समर्थता को स्वीकार किया।

बोध कथा

भक्ति से मिलें हरि, तर्क से अति दूर

—ब्रह्मचारी तृप्ति चैतन्य
रामकृष्ण मिशन, आश्रम, पटना।

गंगा के किनारे-पहाड़ों के पीछे रहते थे ३ साधारण किसान भोले-भाले सरल, प्रेमि, धर्म के गूढ़-तत्व, तथा शास्त्रों का ज्ञान उन्हें नहीं था। न ही वे इस विषय में कभी किसी से तर्क करते—हां उनके पास एक अनमोल संपदा थी। वह थी, प्रभु के प्रति अगाध भक्ति।

तीनों ने निश्चय किया, कुछ ठीक नहीं जीवन का अन्त कब हो—क्यों नहीं बस्ती ग्राम से दूर गंगा के किनारे एकान्त में हरि भजन कर जीवन सार्थक करें। और तीनों गंगा के किनारे निर्जन में प्रभु चरणों का स्मरण कर रहने लगे। उनकी भक्ति से स्थान पवित्र हुआ। भक्ति की मधुर संगीत लहरी चारों ओर उमड़ने लगी। जहां-तहां इन इन भोले-भाले भक्तों की भक्ति उनकी प्रभु प्रेम चर्चा का विषय बन गई—कहते हैं न फूल खिलने पर भ्रमर अपने आप चले आते हैं। उनकी भक्ति की चर्चा के कारण उनके चारो ओर भक्तों का मेला लगने लगा। वह तीनों किसान भक्त अन्य प्रेमियों के साथ मिल प्रभु कीर्तन करते नाचते-गाते—और यह क्रम एक निरंतर धारा के रूप में चल निकला।

पाटलीपुत्र जब यह समाचार पहुँचा, इससे राज्य पंडित के अहंकार को आघात लगा, क्योंकि उसकी दूकान (उसके प्रवचनों में) में श्रोताओं की भीड़ कमने लगी थी। उसने चारों ओर प्रचार किया—कि पहाड़ की तराई में रहने वाले तीनों संत ढोंगी, ठग एवं अहंकारी है। उन्हें धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं है। परन्तु राज्य पंडित के भ्रामक प्रचार का साधारण जन पर कुछ भी प्रभाव न हुआ। तब राज्य पंडित एक दिन अपने कुछ शिष्यों को साथ लेकर नौका द्वारा उन तीन संतों को तर्क द्वारा हराने चल पड़ा। वह जैसे पहाड़ की तराई में पहुँचा, तुरन्त ही तीनों भक्त यह समाचार पाकर राज पंडित के दर्शनों को दौड़ पड़े तथा इससे पूर्व कि राजपंडित नौकों से नीचे उतरते, यह तीनों आगे जाकर उसके पावों पर गिर पड़े तथा उससे आशीर्वाद की प्रार्थना की। यह राजपंडित की आशा के विरुद्ध था।

हजारों प्रभु भक्तों की भीड़ वहां जमा थी। सबने मुक्त कंठों से तीनों भक्तों की निरअहंकरता की प्रशंसा व गुणगान किया। राजपंडित जो विद्वेष से भरा था—मुख पर झूठी मुस्कान ला—उनसे बोला—मूर्खो लोग धर्म विषय कुछ भी नहीं जानते, फिर क्यों यह ढोंग रचकर यहाँ भीड़ जमा किये हो। भक्तों ने हाथ जोड़ कर कहा—प्रभु हम लोग अज्ञानी हैं—सच है, हम धर्म विषयक कुछ भी ज्ञान नहीं रखते—भगवान से केवल भक्ति और उसके चरणों में स्थान के लिए केवल प्रार्थना करते हैं—फिर यह भक्त समाज क्यों यहाँ जया है—इसका वे लोग ही दे सकेंगे। प्रभु हम पर कृपा करें—हम मूर्खों को, अज्ञानियों को परम भक्ति लाभ के लिये आशीर्वाद दें।

"क्या प्रार्थना करते हो—मूर्खो—राज पंडित चिल्लाये।

न भक्ति न ज्ञान हैं हमको,
प्रभु है हम अज्ञान।
यही विनती है प्रभु हमारी,
देना तव चरणों में स्थान॥

भक्तों ने उत्तर दिया"

राज पंडित ने कहा—मूर्खों यह भी कोई प्रार्थना हुई। यह तो फालतु तुकबन्दी है।

प्रभु आप कृपा कर—तव हमें कोई प्रार्थना वता दें। यह उत्तर पाकर राज पंडित ने संस्कृत की लम्वी प्रार्थना वता दी जिसको तीनों भक्त वार-वार दोहराने लगे।

और राज पंडित ने गर्व से अपना मस्तक ऊपर किया, तथा एक विजयी महारथी की भाँति फिर उसी जल मार्ग द्वारा लौट पड़ा।

राज पंडित अभी थोड़ा ही आगे गये थे कि उन्होंने देखा—पीछे द्रुत वेग से पानी की बौछार नौका की तरफ आ रही है। राज पंडित तथा अन्य इस अप्राकृतिक घटना से भयभीत हो गये। किन्तु आश्चर्य—उन्होंने देखा पानी पर उठने वाले तूफान कुछ न थे। वे तीनों भक्त पानी पर दौड़े राजपंडित की तरफ आ रहे थे। राज पंडित को विश्वास न हुआ। उसने स्पष्ट देखने को आँखें मली—तव तीनों भक्तों आकर उसके पावों पर गिर पड़े।

प्रभु हम मूर्ख हैं आपके द्वारा दी गई प्रार्थना भूल गये हैं—कृपा कर हमें फिर वता दें। इस अद्भुत चमत्कार को देखकर राजपंडित का अहंकार चूर-चूर हो गया। भक्ति के नशे तथा प्रार्थना को जानने के आग्रह से तीनों भक्त ने विचार भी नहीं किया था वह जल पर दौड़ रहे हैं। जल्दी पहुँचने के लिए उन्होंने वही जल मार्ग ही पकड़ लिया था।

राजपंडित ने उनको श्रद्धा से नौका पर उठाया तथा वोले—भक्तों मूर्ख तुम लोग नहीं, मैं हूँ। ढोंगी तुम लोग नहीं, मैं हूँ। प्रार्थना मेरी नहीं—प्रार्थना तेरी सच्ची है। भक्तों, कृपा कर आपकी प्रार्थना ही मुझे सिखा दें—और वह उनके चरणों पर गिर पड़ा।

ठीक ही तो कहा है किसी ने—

'प्रेम से मिले हरि, तर्क से वहुत दूर।'

हमारा कर्तव्य दूसरों की आस्था को विचलित करना नहीं है। धर्म अनुभूति है। सर्वोपरि वात यह है कि हमें सबके प्रति निष्कपट होना चाहिए; तादात्मय क्लेश पैदा करता है, क्योंकि वह कामना को जगाता है। एक दीन व्यक्ति सोना देखता है तो सोने की आवश्यकता के साथ अपना तादात्मय अनुभव करता है। साक्षी बनो। प्रतिक्रिया दिखाना मत सीखो।

—स्वामी विवेकानन्द
विवेकानन्द साहित्य
नवम खंड : पृष्ठ-२९७

अखिल भारत विवेकानन्द युवा महामंडल का सत्रहवाँ वार्षिक युवा शिक्षण शिविर

विगत २५ से ३० दिसम्बर १९८३ तक अखिल भारत विवेकानन्द युवा महामंडल का सप्ताह भर का युवा शिक्षण शिविर, रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ के शिल्प-मंदिर के छात्रावास के प्रांगण में आयोजित हुआ था। इस शिक्षण शिविर में पश्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, असम, उड़ीसा, तामिलनाडु, त्रिपुरा, बिहार एवं नई दिल्ली से कुल ६२३ शिक्षार्थियों ने भाग लिया। स्वामी विवेकानन्द प्रदर्शित 'मनुष्यत्व उन्मेषक' और 'चरित्रगठनकारी' शिक्षा के विषय में जानने एवं उसे अपने जीवन में उतारने के आग्रह से ही ये सारे शिक्षार्थी इकट्ठे हुए थे। इनमें न केवल स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय के ही छात्रगण थे बल्कि शिक्षक, अध्यापक, चिकित्सक, कृषिजीवी, श्रमिक, तथा सरकारी और बेसरकारी संस्थाओं के कर्मचारीगण भी थे। भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी, धर्ममतावलम्वी, जाति और श्रेणीयुक्त होते हुए भी सभी शिक्षार्थियों के भीतर एक भीतरी एकात्मा अनुभूत हुई थी—जो स्वामी विवेकानन्द प्रदर्शित आदर्श 'सच्चा मनुष्य वनना और गठन करना' के अनुरूप थी।

२५ दिसम्वर को स्वामी अनन्यानन्दजी महाराज (अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम, मायावती, हिमालय) ने महामंडल का झंडोत्तोलन कर शिक्षार्थियों का उद्बोधन किया। उद्बोधनी सभा में डॉ० सीतानाथ गोस्वामी ने संस्कृत, स्वामी मुख्यानन्दजी ने हिन्दी, स्वामी सर्वदेवानन्दजी ने बंगला और स्वामी स्मरणानन्दजी ने अंग्रेजी में, स्वामी विवेकानन्दजी के भावादर्श और उसकी उपयोगिता के विषय में संक्षिप्त किन्तु सारगर्भ एवं मनोज्ञ व्याख्यान दिया। अपने अध्यक्षीय भाषण में स्वामी अनन्यानन्दजी ने शिक्षार्थियों से कहा कि वे सब स्वामी विवेकानन्दजी की अमोघ वाणी 'आप मनुष्य बनो और दूसरों को मनुष्य बनाने में सहायता करो' को अपने-अपने जीवन में ढालने की चेष्टा करें। महामंडल के अध्यक्ष श्री अमिय कुमार मजुमदार ने महामंडल के आदर्श का सार तत्व समझाकर उपस्थित लोगों को उस आदर्श को सफल करने के लिए काम में लग जाने का आह्वान किया।

पूरे सप्ताह शिविर के प्रतिदिन प्रातः में वेदमंत्र-ध्वनि के साथ-साथ मनःसंयमन की प्रयोग पद्धति, स्वामी विवेकानन्दजी के 'राजयोग' के ऊपर आधारित चर्चा, शरीर-चर्चा, महामंडल का आदर्श और उद्देश्य चरित्रगठन के उपाय, असली शिक्षा का तात्पर्य, 'समाज सेवा क्या और क्यों? आदि विषयों पर चर्चा, और संगठकों का विशेष प्रशिक्षण चला।

प्रतिदिन संध्या के उन्मुक्त अधिवेशन में आमन्त्रित वक्ताओं ने शिक्षा, गणोन्नति, जातीय संहति, सांस्कृतिक ऐतिह्य आदि विभिन्न विषयों पर स्वामी विवेकानन्दजी के शिक्षादर्श के अनुसार मनोज्ञ भाषण दिये। इनमें थे अध्यक्ष श्री अमिय कुमार मजुमदार, स्वामी सत्यरूपानन्दजी, डा० निमाई साधन बोस तथा स्वामी आत्मस्थानन्दजी। ३० तारीख की शाम को विदाई सभा में सभापति के भाषण मे रामकृष्ण मठ और मिशन के स्वामी निरामयानन्दजी ने शिक्षार्थियों के उद्देश्य के सम्बन्ध में कहा कि वे स्वामी विवेकानन्दजी के कुछ न कुछ भावों का अपनायें और शिविर का पाठ घर ले जाकर तदनुसार अपना जीवन-गठन करें और उसी के अनुसार दूसरों को उत्साहित करें।

२९ दिसम्बर को १२८ शिक्षार्थियों ने कलकत्ते के केन्द्रीय ब्लड बैंक की भ्राम्यमाण शाखा में रक्त दान किया।

३० दिसम्बर को सबेरे शिविरवासी एक शानदार जुलूस में भाग लेकर संगीत गाते और नारे लगाते हुए बेलुड़ मठ पहुँचे। उन सब ने वहाँ विभिन्न मन्दिरों का दर्शन कर रामकृष्ण मठ और मिशन के अध्यक्ष, श्रीमत स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज और श्रीमत स्वामी अभयानन्दजी (भरत महाराज) को श्रद्धा-निवेदन किया।

दिव्यायन में किसान मेला

रामकृष्ण मिशन, राँची द्वारा गत २८ और २९ जनवरी १९८४ ई० को दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र के छठे वार्षिक किसान मेला का आयोजन किया गया। बिहार के राज्य मंत्री श्रीबन्दी ओरांव ने उक्त मेले का उद्घाटन करते हुए किसानों के लिए रामकृष्ण मिशन द्वारा की जानेवाली समर्पित सेवाओं की सराहना की और सरकारी अधिकारियों से उनका अनुकरण करने तथा ऐसी स्वेच्छिक संस्थाओं के सम्पर्क के द्वारा छोटानागपुर के लोगों के हित के लिए कार्य करने का अनुरोध किया। इसके पूर्व रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के सचिव स्वामी शुद्धव्रतानन्द ने मुख्य अतिथि, आमंत्रितजनों तथा किसानों का स्वागत किया और दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र के प्रशिक्षण संचालक श्रीसुदर्शन तिवारी ने दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र के क्रियाकलापों का लघु विवरण प्रस्तुत किया।

२९ जनवरी के समापन समारोह के मुख्य अतिथि थे विहार सरकार के कल्याण, गृह एवं पर्यटन राज्य मंत्री श्री टी० मोची राय मुंडा। श्री मुंडा ने रामकृष्ण मिशन, राँची द्वारा अच्छी मिट्टी नहीं होने के बावजूद फ़सल बोने की पद्धति में परिवर्तन और उत्पादन में वृद्धि लाने के लिए इस इलाके के किसानों को प्रशिक्षण देने के प्रशंसनीय कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि केवल वे ही नहीं इस मिशन के प्रशंसक हैं, बल्कि श्रीमती इन्दिरा गांधी भी यहाँ आकर इसके कार्यों की प्रशंसा तथा उन कार्यों में अपनी गहरी अभिरुचि प्रदर्शित कर चुकी हैं।

डॉ० सी० प्रसाद योजना (प्रोजेक्ट) निदेशक, प्रयोगशाला से भूमि, कृषि अनुसंधान की भारतीय परिषद्, नयी दिल्ली ने समारोह की अध्यक्षता की एवं अन्तर ग्राम क्रीड़ा प्रतियोगिता में भाग लेने वालों के बीच पुरस्कार वितरण किया। उन्होंने कहा कि भारत में ७० कृषि विज्ञान केन्द्र हैं जिनमें दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र को भारत सरकार सर्वोत्तम कृ० वि० केन्द्रों में एक मानती है। उन्होंने सूचित किया कि कृषि विज्ञान केन्द्रों की शुरूआत किसानों को व्यावहारिक प्रशिक्षण देने के लिए की गयी है ताकि कृषि सम्बन्धी आधुनिकतम-प्रविधियाँ (टेक्नोलोजी) किसानों तक पहुँच सकें और वे उनसे फायदे उठा सकें। इस दिशा में दिव्यायन के कार्यों की उन्होंने प्रशंसा की। उन्होंने सभी अधिकारियों और वैज्ञानिकों को रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों से—जिन्होंने अपना जीवन इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए समर्पित कर दिया है—शिक्षा ग्रहण करने का अनुरोध किया।

राँची जिले के विभिन्न गाँवों के किसानों से फसलों और पशुओं की लगभग ५०० प्रविष्टियाँ प्राप्त हुईं। २८ जनवरी को एक किसान गोष्ठी आयोजित हुई जिसमें बड़ी संख्या में किसानों और अधिकारियों ने भाग लिया। उसी दिन एक सांस्कृतिक कार्यक्रम और चलचित्र-प्रदर्शन का भी आयोजन हुआ।

स्वामी विवेकानन्द के जन्मोत्सव के अवसर पर हर वर्ष किसान मेला और अन्तर-ग्राम क्रीड़ा प्रतियोगिताओं का आयोजन, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची द्वारा किया जाता है।

श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव

बेलुड़ मठ (पं० बंगाल)। परम हंस श्रीरामकृष्ण देव की १४९ वीं जन्म-तिथि रविवार ४ मार्च को थी। इस उपलक्ष में विभिन्न स्थानों में दिन भर विभिन्न प्रकार से तिथि पूजा हुई। मंगल आरती, स्तवगान, कथामृत-पाठ, कीर्तन, विशेष पूजा, धर्म-सभा और प्रसाद-वितरण इस उत्सव के अंग थे।

उत्सव का मूल केन्द्र था बेलुड़ का रामकृष्ण मठ। श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ, श्री सारदा मठ (दक्षिणेश्वर), श्री सारदेश्वरी आश्रम, रामकृष्ण-विवेकानन्द मिशन (बैरकपूर), रामकृष्ण मिशन बालकाश्रम (रहड़ा), श्रीरामकृष्ण सारदामठ हवड़ा, श्रीरामकृष्ण संघ आदि स्थानों में भी विशेष पूजा के उपलक्ष में भक्तों का समागम हुआ। कामारपुकुर में स्थित श्रीरामकृष्ण के मन्दिर में भी अनेक पुण्यार्थी ठाकुर-दर्शन को एकत्र हुए।

बेलुड़ मठ में इस शुभ दिन की सूचना मंगल आरती के माध्यम से दी गयी। प्रातः काल विभिन्न विद्यालयों के छात्र एवं छात्राएँ शोभा यात्रा निकालकर बेलुड़ आयीं, आनन्द स्वरूप परमहंसदेव के पाद-पद्मों में अपनी प्रगति अर्पित करने। संध्याकाल में मंदिर के प्राङ्गण में आयोजित धर्म सभा का सभापतित्व किया रामकृष्ण मठ और मिशन के उपाध्यक्ष स्वामी गंभीरानन्द ने। श्रीरामकृष्ण के जीवन और उपदेशों पर मठ और मिशन के स्वामी वन्दनानन्द तथा डॉ गोविन्द गोपाल मुखोपाध्याय ने। उन दोनों वक्ताओं ने संदेह और विभ्रान्ति के आज के गहन अंधकार में श्रीराम कृष्ण के जीवनादर्श और पद चिह्नों की चर्चा कर उसी पथ पर आगे बढ़ने का श्रोताओं से आह्वान किया।

रहड़ा रामकृष्ण मिशन बालकाश्रम में दो दिनों का अनुष्ठान किया गया जिसमें स्वामी रुप्रात्मानन्द और अध्यापक प्रेमवल्लभ सेन ने श्रीरामकृष्ण, सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द के जीवन और शिक्षाओं का विवेचन किया। सभापति थे स्वामी निरामयानन्द।

□

रूस में रामकृष्ण

मास्को, २४ मार्च। सोवियत संघ की नयी "फिलॉसॉफिक इनसाइक्लोपेडिक डिक्शनरी" में भारतीय दर्शन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मास्को के सोवियत इनसाइक्लोपीडिया पब्लिशर्स द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में दो हजार से अधिक पृष्ठ हैं। ए०पी०एन के अनुसार इस नये विश्वकोष में सोवियत विद्वानों के द्वारा भारतीय दर्शन पर ५० से अधिक वर्षों तक किये गये अध्ययन का सार दिया गया है। य०डी० लि० मैन, ई० एन० कोमारोव, आर० बी० रायवाकोव और अन्य कितने ही सोवियत विद्वानों ने भारतीय दर्शन के विभिन्न पहलुओं और भारत के अध्ययन के लिए स्वयं को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया है।

इस विश्व कोष में भारतीय दर्शन के सन्दर्भ में अनेक भारतीय एवं यूरोपीय विद्वानों की कृतियों का उल्लेख किया गया है। वेद और उपनिषदों को इस ग्रंथ में प्रमुख स्थान दिया गया है। इनके अतिरिक्त इस विश्वकोष में श्रीरामकृष्ण परमहंश और स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों एवं भारत एवं भारत के पुनर्निर्माण इन दोनों संत-महापुरूषों के उल्लेखनीय योगदान के महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

(वार्ता)